अप्रैल – 2020
वर्ष – 84 | अंक – 4 | ₹ – 19 प्रति | ₹ – 220 वार्षिक

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

www.awgp.org

5 जरूरी है जल का संरक्षण एवं संग्रहण
12 सृष्टि के जन्म का महोत्सव
33 प्राणशुद्धि बनाती है प्रज्ञावान
49 कर्मशुद्धि है आध्यात्मिक चेतना का आधार

अश्वमेध महायज्ञ–हैदराबाद (तेलंगाना) में अभूतपूर्व जनभागीदारी के साथ संपन्न

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 84
अंक	: 04
अप्रैल	: 2020
चैत्र-वैशाख	: 2077
प्रकाशन तिथि	: 01.03.2020

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)	
भारत में	: 5000/-

श्रद्धा

जिस जगत से हमारा परिचय है—वह जगत तर्क, गणित की भाषा को समझता है। यहाँ निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए विवादों का पथ स्वीकार करना स्वाभाविक क्रम में सम्मिलित है। परंतु इस जगत से परे भी एक जगत है, जहाँ तर्क की भाषा को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। वहाँ श्रद्धा की, विश्वास की भाषा का प्रचलन है और वहाँ परिणाम को उपलब्ध होने के लिए समर्पण का पथ स्वीकारना पड़ता है।

श्रद्धा—प्रेम की दिशा के बदल जाने का नाम है। प्रेम जब संसार की ओर बहता है, इंद्रियसुख में तृप्ति को ढूँढ़ता है, आसक्तियों में उलझता है तो वासना बन जाता है। वही प्रेम जब चेतना की ओर चल पड़ता है, वासनाओं से परे चला जाता है, परमात्मा को समर्पित हो जाता है तो श्रद्धा बन जाता है। तर्क दिखने में बड़ी बातें करता है, पर बड़े कमजोर आधार पर खड़ा होता है। तर्क का उद्देश्य अहंकार की रक्षा करना है और इसीलिए तर्क रोज बदल जाते हैं। श्रद्धा का पथ, अहंकार को मिटाने के बाद ही प्रारंभ होता है, इसलिए वो शाश्वत है और उस पर चलने का साहस भी विरले ही जुटा पाते हैं। जो स्वयं को मिटाकर चलने का साहस रखे, मात्र वही इस पथ का पथिक बन पाता है।

हम आसक्तियों में, राग में, द्वेष में, कामनाओं में, अहंकार में स्वयं को ढूँढ़ने का निरर्थक प्रयास करते हैं। यह कुछ ऐसा ही है, जैसे सामान घर में खोया हो और हम उसे ढूँढ़ने का प्रयास, पड़ोस के मुहल्ले में कर रहे हों। परमात्मा हमारे भीतर ही तो है—उसे ढूँढ़ने के लिए भीतर उतरने की आवश्यकता है। संसार को पाने के लिए तर्क की भाषा जाननी पड़ती है और परमात्मा से मिलने के लिए श्रद्धा के बोल जरूरी हैं। श्रद्धा के जगत में आँखों की नहीं, हृदय की जरूरत है; वहाँ अंधा होना ही आँख वाला होना है। जो अपने अहंकार को नष्ट करने की ताकत रखते हों, वो शूरमा ही श्रद्धासिक्त हैं, वो साहसी वीर ही भक्तशिरोमणि हैं। ❐

विषय सूची

- श्रद्धा 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  जरूरी है जल का संरक्षण एवं संग्रहण 5
- मौन की महिमा 8
- बिना शांत मन के
  ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं 10
- **पर्व विशेष**
  सृष्टि के जन्म का महोत्सव 12
- ईश्वर अंश जीव अविनाशी 14
- वृक्षों से मैत्री करें 18
- भारतीय संस्कृति को सामयिक संदर्भ में
  प्रस्तुत करती ये प्रतिभाएँ 21
- साधना में धैर्य है जरूरी 23
- महावीर स्वामी का आत्मभाव 25
- प्रज्ञा 27
- इंद्रिय प्रलोभनों से सावधान 29
- आध्यात्मिक जीवन का आधार है त्याग 31
- प्राणशुद्धि बनाती है प्रज्ञावान 33
- टहलना भी है व्यायाम 35
- सच्ची हो साधना तो सिद्धि सुनिश्चित है 37
- **चेतना की शिखर यात्रा—211**
  अवतार-प्रक्रिया का रहस्य 39
- पर्यटनस्थलों को सुधारते ये युवा 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—132**
  डायरी लेखन का किशोरियों के
  मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव 45
- बच्चों के सच्चे अभिभावक बनें 47
- कर्मशुद्धि है आध्यात्मिक चेतना का आधार 49
- **युगगीता—239**
  प्रकृति व पुरुष से पार
  विशेष पुरुष हैं परमेश्वर 51
- जानें महिमा ओंकार की 53
- व्यक्तित्व की परिचायक है वाणी 54
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—1**
  आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांत (प्रथम किस्त) 56
- **विश्वविद्यालय परिसर से—178**
  सेवा के संकल्प से संकल्पित हुए विद्यार्थी 61
- **अपनों से अपनी बात**
  वर्तमान समय की सार्थक एवं सच्ची साधना 63
- इस दशाब्दि का वसंत (कविता) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

शिवा और समर्थ का एक सशक्त युग्म

अप्रैल-मई, 2020 के पर्व-त्योहार

गुरुवार	02 अप्रैल	श्रीरामनवमी/समर्थ गुरु रामदास जयंती	मंगलवार	28 अप्रैल	आद्यशंकराचार्य जयंती
शनिवार	04 अप्रैल	कामदा एकादशी	बुधवार	29 अप्रैल	सूर्य षष्ठी
सोमवार	06 अप्रैल	महावीर स्वामी जयंती	सोमवार	04 मई	मोहिनी एकादशी
बुधवार	08 अप्रैल	हनुमज्जयंती	बुधवार	06 मई	नृसिंह जयंती
मंगलवार	14 अप्रैल	आंबेडकर जयंती	गुरुवार	07 मई	बुद्ध पूर्णिमा
शनिवार	18 अप्रैल	वरूथिनी एकादशी	सोमवार	18 मई	अपरा एकादशी
शनिवार	25 अप्रैल	शिवाजी/ परशुराम जयंती/रमजान	शुक्रवार	22 मई	वट सावित्री व्रत
रविवार	26 अप्रैल	अक्षय तृतीया	सोमवार	25 मई	महाराणा प्रताप जयंती
			गुरुवार	28 मई	सूर्य षष्ठी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** ***—संपादक***

विशिष्ट सामयिक चिंतन

जरूरी है जल का संरक्षण एवं संग्रहण

हमारे देश में उपलब्ध पानी का करीब 70 फीसदी हिस्सा दूषित है। पानी की गुणवत्ता के लिहाज से हम 122 देशों में 120वें स्थान पर हैं। नीति आयोग ने अपनी रिपोर्ट में आगाह किया है कि सन् 2020 तक पानी की माँग उपलब्धता से दुगनी हो जाएगी। साठ करोड़ लोग जल संकट से सीधे प्रभावित हैं। एक दशक के बाद इस समस्या से सकल घरेलू उत्पादन में छह फीसदी की कमी आ सकती है। देशभर में 91 वृहद् आकार वाले जलाशय हैं, जिनकी कुल जल-भंडारण की क्षमता 161 बिलियन क्यूबिक मीटर है। इनमें से 37 बड़े जलाशयों में से प्रत्येक से 60 मेगावॉट से अधिक हाइड्रो पावर का उत्पादन किया जाता है।

हाल ही में संबंधित विभाग द्वारा जारी रिपोर्ट के मुताबिक इन जलाशयों में जल का स्तर 17 फीसदी ही शेष बचा है। ग्रीष्म में भीषण गरमी के कहर को देखते हुए देश में जल-संरक्षण की आवश्यकता अब समझ आती है। गरमी में पूरे उत्तर भारत समेत देश के कई हिस्सों में गरमी कहर ढाती है। देश के कुछ हिस्सों में पारा 48 डिगरी के करीब पहुँचने लगता है। भीषण गरमी का आलम यह है कि अब तक जहाँ सिर्फ मैदानी इलाकों में गरमी की तपिश थी, वहीं अब पहाड़ी इलाकों का भी तापमान बढ़ने लगा है। मौसम विभाग के मुताबिक आने वाले दिनों में भी लोगों को गरमी से राहत मिलने की उम्मीद नहीं है। गरमी के इस कहर को देखते हुए देश में जल-संरक्षण की आवश्यकता समझ आती है।

भारत में वर्षा और जल-संरक्षण का विशेष अध्ययन करने वाले मौसम विज्ञानी पीआर पिशारोटी ने बताया है कि यूरोप और भारत में वर्षा के लक्षणों में महत्त्वपूर्ण अंतर है। यूरोप में वर्षा धीरे-धीरे पूरे साल होती रहती है। इसके विपरीत भारत के अधिकतर भागों में साल के 8760 घंटों में से लगभग 100 घंटे मात्र ही वर्षा होती है। इसमें से कुछ समय मूसलाधार वर्षा होती है। इस कारण आधी बारिश मात्र घंटों में ही हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि जल-संग्रहण और संरक्षण यूरोप के देशों की अपेक्षा भारत जैसे देशों में कहीं अधिक आवश्यक है। भारत की वर्षा की तुलना में यूरोप में वर्षा की सामान्य बूँद काफी छोटी होती है। इस कारण उसकी मिट्टी काटने की क्षमता भी कम होती है।

यूरोप में बहुत-सी वर्षा बरफ के रूप में गिरती है, जो धीरे-धीरे धरती में समाती रहती है; जबकि भारत में बहुत-सी वर्षा मूसलाधार रूप में गिरती है, जिसमें मिट्टी को काटने और बहाने की बहुत क्षमता होती है। दूसरे शब्दों में हमारे यहाँ की वर्षा की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि अगर उसके जल के संग्रहण और संरक्षण की उचित व्यवस्था नहीं की गई तो यह जल बहुत मिट्टी बहाकर निकट की नदी की ओर वेग से दौड़ेगा और नदी में बाढ़ आ जाएगी। चूँकि अधिकतर जल न एकत्र होगा न धरती में रिसेगा, इसलिए कुछ समय बाद जल संकट उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है। इन दोनों विपदाओं को कम करने के लिए या दूर करने के लिए जीवनदायी जल का अधिकतम संरक्षण और संग्रहण आवश्यक है। इसके लिए पहली आवश्यकता है—वन, वृक्ष और हर तरह की हरियाली की; जो वर्षा के पहले वेग को अपने ऊपर झेलकर उसे धरती पर धीरे से उतारे, ताकि यह वर्षा मिट्टी को काटे नहीं, अपितु काफी हद तक स्वयं मिट्टी में ही समा जाए या रिस जाए।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कदम यह है कि वर्षा का जो शेष पानी नदी की ओर बह रहा है, उसके अधिकतम संभव हिस्से को तालाबों या पोखरों में एकत्र कर लिया जाए। वैसे इस पानी को मोड़कर सीधे खेतों में भी लाया जा सकता है। खेतों में गिरने वाला वर्षा का अधिकतर जल खेतों में ही रहे, इसकी व्यवस्था भू-संरक्षण के विभिन्न उपायों, जैसे मेढ़बंदी, पहाड़ों में सीढ़ीदार खेत आदि से की जा सकती है। तालाबों में जो पानी एकत्र किया गया है, वह उनमें अधिक समय तक बना रहे, इसके लिए तालाबों के आस-पास पौधारोपण हो सकता है और वाष्पीकरण कम करने वाला विशेष आकार का तालाब बनाया जा सकता है।

नल, हैंडपंप, नलकूप या पाइप लाइन—ये सब कई गाँवों में ज्यादा नजर आ रहे हैं, लेकिन जिस भूजल से, तालाब या झरने से इन्हें पानी मिलना है, अगर उनमें ही पानी कम होने लगे तो भला इन निर्माणकार्यों से क्या समस्या हल होगी? हाल ही में सुप्रीम कोर्ट को केंद्रीय भूजल बोर्ड के वैज्ञानिकों ने बताया कि पिछले लगभग दस-पंद्रह वर्षों में हमारे देश के भूजल स्तर में बहुत तेजी से गिरावट आई है। पहाड़ी क्षेत्रों से कितने ही झरनों के सूखने या पतले पड़ने के समाचार हैं। बहुत बड़ी संख्या में तालाब मैदान जैसे बन गए हैं, उन पर अतिक्रमण हो चुका है या वे बुरी तरह जीर्ण-शीर्ण स्थिति में पड़े हैं।

जल की कमी के संकट को जल प्रदूषण ने और भी विकट कर दिया है। छोटी-छोटी नदियाँ भी इतनी प्रदूषित हो गई हैं कि इससे कई गाँवों की जल-उपलब्धि पर प्रतिकूल असर पड़ा है। जहाँ कृषि रसायनों का अत्यधिक उपयोग हो रहा है, वहाँ भूजल पर इतना ही हानिकारक असर नजर आने लगा है। कई क्षेत्रों में जल संकट की परवाह न करते हुए ऐसे उद्योग लगाए जा रहे हैं, जो जल का अत्यधिक उपयोग करेंगे और जल प्रदूषण में वृद्धि करेंगे। कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं, जहाँ जल संकट को नजरअंदाज करते हुए जल का अत्यधिक उपयोग करने वाली ऐसी नई फसलों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिनका लाभ तो कुछ पहले से समृद्ध लोगों तक ही सीमित रहेगा, लेकिन जिनके दुष्परिणाम नीचे गिरने वाले भूजल के रूप में जनसाधारण को भुगतने पड़ेंगे।

शहरी क्षेत्रों में पाँच-सितारा होटल, लॉन, गोल्फ-कोर्स आदि अत्यधिक जल-उपयोग वाली सुविधाओं के जुटाने में हम तेजी से आगे बढ़ रहे हैं; जबकि अनेक बस्तियों में जल-अभाव का हाहाकार है। अन्य प्राकृतिक संसाधनों की तरह जल का बँटवारा भी विषमता से ग्रस्त है और यह विषमता जल संकट की स्थिति में असहनीय हो जाती है। एक ओर लोग पीने के पानी को तरसते रहें और दूसरी ओर पानी का अपव्यय होता रहे यह वर्तमान की दृष्टि से तो अन्यायपूर्ण है ही, साथ ही भविष्य में समस्या का स्थायी हल खोजने में भी यह विषमता एक रुकावट बनती है। इस विषमता के कारण जल-वितरण और उपयोग का ऐसा नियोजन नहीं हो सकता है, जो सबकी प्यास बुझाने में समर्थ हो।

सार्थक जल-नियोजन के लिए जरूरी है कि निहित स्वार्थों के दबाव की परवाह न करते हुए सबसे अधिक प्राथमिकता इस बात को दी जाए कि हर व्यक्ति, हर झोंपड़ी, हर गाँव की प्यास को बुझाया जा सके। पानी के अन्य उपयोग चाहे वे किसी नई फसल के लिए हों या किसी उद्योग के लिए; तभी सोचे-विचारे जाएँ, जब पहले इस बुनियादी जरूरत को संतोषजनक ढंग से पूरा कर लिया गया हो। इस प्राथमिकता पर कायम रहने के साथ यह भी जरूरी है कि पीने के पानी की आपूर्ति के कार्य को केवल हैंडपंप लगाने या कुएँ खोदने तक सीमित न रखकर उन सभी महत्त्वपूर्ण गतिविधियों और क्षेत्रों को ध्यान में रखा जाए, जिनका असर पानी की उपलब्धता पर पड़ता है। किसी ग्रामीण क्षेत्र में पीने के पानी की योजना बनाई जा रही हो और वह इस बात से अनभिज्ञ रहे कि ऊपर पहाड़ी पर जो जंगल काटा जाने वाला है, उसका जल की उपलब्धता पर क्या असर पड़ेगा तो यह योजना सफल नहीं हो सकती है।

इसी तरह औद्योगिक प्रदूषण, कृषि रसायनों का उपयोग, फसल चक्र में होने वाले बदलाव, खनन कार्य— ये सभी वो क्षेत्र हैं, जिनका पेयजल-उपलब्धता पर असर पड़ सकता है। अत: व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि इन विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी परियोजनाओं और नए कार्यक्रमों पर जल-उपलब्धता की दृष्टि से भी विचार किया जाए और उनके पक्ष में निर्णय लेने से पहले जल-उपलब्धता की स्थिति पर उनका क्या असर होगा, इस प्रश्न को समुचित महत्त्व दिया जाए। दूसरी ओर जल-नियोजन के कार्य में लगे लोग भी इन क्षेत्रों में हो रहे बदलावों पर नजर रखें और यदि इनकी जल-उपलब्धता पर प्रतिकूल असर पड़ने की संभावना हो तो इस बारे में समय पर चेतावनी देने की भूमिका वे निभाएँ।

सरकार के पास संतोषजनक पेयजल स्थिति होने के जो आँकड़े विभिन्न गाँवों से पहुँचते हैं, उन्हें भेजने वालों को स्पष्ट निर्देश होने चाहिए कि कुछ नलकूप खोद लेने से ही स्थिति संतोषजनक नहीं हो जाती है। भूजल नीचे तो नहीं जा रहा है, झरने सूख तो नहीं रहे हैं, जल का प्रदूषण बढ़ तो नहीं रहा है, इन सब बातों के उचित अध्ययन से ही यह स्थिति स्पष्ट हो सकती है कि क्या इस गाँव (या गाँवों के समूह) की पेयजल स्थिति वास्तव में संतोषजनक है अथवा यहाँ पर पेयजल की कमी का संकट मँडरा सकता है।

इस ओर भी ध्यान देना जरूरी है कि पेयजल के जो नए साधन या स्त्रोत उपलब्ध कराए जा रहे हैं, उनके रखरखाव और मरम्मत की कितनी जानकारी स्थानीय लोगों तक पहुँचती है। अगर थोड़ी-सी समस्या उत्पन्न होने पर लोगों को कई दिनों तक बाहरी सहायता के इंतजार में प्यासे रहना पड़े तो इस तरह की निर्भरता बढ़ाने वाली नई तकनीक को आदर्श नहीं माना जा सकता है। वास्तव में देश में एक ऐसी जलव्यवस्था चाहिए, जिसमें नई तकनीक परंपरागत उपायों का विरोध न करे; अपितु उनकी कमियों को दूर करने या समय की आवश्यकता के अनुसार क्षमता बढ़ाने का कार्य करे।

जल-संग्रहण और संरक्षण के विभिन्न तौर-तरीके देश के विभिन्न भागों में (विशेषकर पानी की कमी वाले क्षेत्रों में) सदियों के अनुभव से विकसित किए गए और यह एक ऐसी अनमोल विरासत है, जिसकी उपेक्षा कर हम पेयजल का संकट हल करने में सफल नहीं हो सकते हैं। दूसरी ओर यह भी सच है कि बदलती परिस्थितियों में कई जगहों पर तरह-तरह की नई तकनीकी की जरूरत है। इनके बीच में सामंजस्य बनाने में सुविधा होगी अगर पेयजल योजनाओं को बनाने और कार्यान्वित करने में स्थानीय लोगों की भरपूर भागीदारी हो।

भारत स्वच्छ और बेहतर पेयजल, खासकर भूजल की गंभीर कमी से जूझ रहा है। देश के 19000 गाँव ऐसे हैं, जहाँ पीने का साफ पानी नहीं है। विशेषज्ञों का कहना है कि अगर यही स्थिति बनी रही तो आने वाले समय में यह संकट और बढ़ेगा। इसका प्रमुख कारण होगा जल का अत्यधिक दोहन और जलवायु-परिवर्तन। 'वर्ल्ड रिसोर्सेज इन्स्टीट्यूट' के अध्ययन से यह बात सामने आई है कि भारत में जलाशयों के कम होने के कारण लोगों के घरों तक पहुँचने वाले पानी के नल पूरी तरह सूख जाने की आशंका है। इस अध्ययन में भूजल स्तर के गिरते जाने पर भारत में कृषि पर निर्भर लोगों को लेकर भी चिंता जताई गई है।

एक शोध में पता चला है कि भारत के 16 राज्यों में भूजल में यूरेनियम की मात्रा खतरनाक स्तर पर है। यह मात्रा 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के मानक से बहुत अधिक है। अमेरिका के ड्यूक विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों का यह अध्ययन 'एनवायरमेंटल साइंस एंड टेक्नोलॉजी लेटर्स' में प्रकाशित हुआ है। इसके लिए उन्होंने 16 राज्यों तथा राजस्थान और गुजरात के 324 कुओं से नमूने लिए थे।

मानकों के अनुसार भारत में एक लीटर पानी में अधिक-से-अधिक 30 माइक्रोग्राम यूरेनियम होना चाहिए। इसके बावजूद सरकार की निगरानी संस्था 'ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टैंडर्ड्स' ने पेयजल शुद्धता के लिए तय मानकों में यूरेनियम को शामिल नहीं किया है। इसकी अधिकता किडनी की बीमारियों के लिए जिम्मेदार है। भूजल स्तर घटने और नाइट्रेट प्रदूषकों के कारण यूरेनियम अधिक होता जा रहा है।

इसका एक बड़ा कारण भूजल के स्त्रोतों से हिमालय से आते पानी में ग्रेनाइट पत्थरों के यूरेनियम का मिश्रण भी है। पेयजल और सिंचाई के इस प्रमुख जल संसाधन को बेहतर करने के लिए जरूरी है कि यूरेनियम की मात्रा मापने की प्रक्रिया अपनाई जाए, ताकि इससे बड़ी आबादी को होने वाले नुकसान को रोका जा सके।

जीभ से निकले शब्द कानों से टकराकर बिखर जाते हैं, पर हृदय से निकली वाणी कलेजों में घुस बैठती है और फिर निकलने का नाम नहीं लेती।

केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय के अनुसार विश्व बैंक ने छह हजार करोड़ की योजना को हरी झंडी दे दी है। इसके तहत कुछ चुनिंदा इलाकों में भूजल संरक्षण कार्यक्रम बनाया गया है। 'अटल भूजल योजना' नामक परियोजना इस कार्य में अधिक कारगर हो सकती है। सन् 2018-19 से 2022-23 तक इस परियोजना को गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में लागू करने का प्रस्ताव है। देश में भूजल का जहाँ सर्वाधिक दोहन हुआ है, उनमें से 25 फीसदी इलाके इन राज्यों में हैं।

सरकारी आँकड़ों के मुताबिक देश के 6584 प्रखंडों में से 1034 प्रखंड बुरी तरह प्रभावित हैं और उन्हें 'डार्क जोन' के रूप में चिह्नित किया गया है। इनके अलावा 934 प्रखंड ऐसे हैं, जहाँ हालात गंभीर हैं। प्रस्तावित योजना से इन राज्यों के 78 जिलों की 8350 ग्राम पंचायतों के लाभान्वित होने की आशा है। सरकार के इस उद्यम के अलावा हमें अर्थात हर नागरिक को भी जल-संग्रहण एवं संरक्षण के लिए जागरूक हो जाना चाहिए। ❑

मौन की महिमा

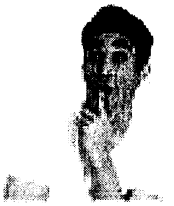

मौन की महिमा अपरंपार है। मौन जहाँ अपने अंदर प्रवेश का द्वार है, वहीं मौन शांति का भी आगार है। मौन जहाँ रचनात्मकता का उर्वर स्रोत है, वहीं निश्चिंतता का भी सबल आधार है। मौन जहाँ शक्ति का अजस्र भंडार है, वहीं व्यवहारकुशलता का भी एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। मौन के लाभ तमाम हैं तथा इसकी महिमा अपरंपार है।

यही कारण है कि साधनात्मक जीवन में प्रत्येक दिन कुछ घंटे मौन रहने के अभ्यास पर बल दिया जाता है। मालूम हो कि बोलने से व्यक्ति की शक्ति का क्षरण होता है। सामान्यतया इसका एहसास भी नहीं हो पाता, लेकिन लगातार बोलने के बाद यह समझ आता है। अधिक बोलने के साथ जैसे-जैसे ऊर्जा का क्षरण होता जाता है, मानसिक ऊर्जा के ह्रास के साथ विचार भी विशृंखलित होने लगते हैं। साथ ही बहिर्मुखता हावी होने लगती है, चित्त की स्थिरता प्रभावित होती है व मन की शांति एवं एकाग्रता न्यून होने लगती है। मन की एकाग्रता के अभाव में व्यावहारिक चूकें होने लगती हैं तथा जीवन की रचनात्मकता एवं उत्कृष्टता में कमी आती है।

मौन व्यक्ति को अंतर्मुखी बनाकर अंतस्थ बनाता है, अपने अंदर स्थिर होने में सहायता करता है। व्यावहारिक जीवन में मौन कई तरह की व्यवहारजन्य बेवकूफियों से बचाता है। बहुत अधिक बोलने में व्यक्ति अधिक सोच नहीं पाता। ऐसे में तत्काल पता ही नहीं चलता कि बोलने में कहाँ चूक हो रही है। इसमें अपने व्यक्तित्व का प्रभाव कम होता है, इसका हलकापन झलकता है। साथ ही कुछ अनर्गल एवं गलत अभिव्यक्ति दूसरों के भावों को आहत कर सकती है। ऐसे में वक्ता की अपने मन की शांति एवं स्थिरता प्रभावित होती है। मौन का अवलंबन ऐसी चूकों से व्यक्ति को बचाता है और जीवन को अधिक सरल एवं प्रभावशाली बनाता है।

विद्यार्थी जीवन में मौन रहकर स्वाध्यायरूपी तप पर बल दिया जाता है, जिसमें एकांत का अपना महत्त्व रहता है। अध्ययन, लेखन या रचनात्मक कार्यों में एकांत में साधा गया मौन, कार्य की उत्पादकता के लिए उर्वर पृष्ठभूमि का काम करता है। शांत-एकांत परिवेश में मौन के साथ संगृहीत ऊर्जा एकाग्र होकर लक्ष्य का आतिशी शीशे की भाँति भेदन करती है। विदित हो कि जैसे सूर्य की किरणें आतिशी शीशे से प्रवेश होकर नीचे रखे गए किसी भी पदार्थ को जला देती हैं, अन्यथा विशृंखलित किरणों में महज कुछ गरमी मिलने से अधिक प्रयोजन सिद्ध नहीं हो पाता। इसी तरह साहित्य, कला, विज्ञान व जीवन के अन्य क्षेत्रों में संभव हो रहे उत्कृष्ट कार्य वस्तुत: मौन में संपादित एकाग्रता के परिणाम होते हैं। अध्यात्म क्षेत्र में यह सिद्धांत विशेष रूप से लागू होता है। इसीलिए तप एवं साधना के विधानों में मौन का विशेष महत्त्व बताया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में मौन को वाणी के तप में गिना गया है। इसके अध्याय 16-17 में कहा गया है कि मन की चंचलता को नियंत्रित करने वाले मौन की स्थिति में मनुष्य सीधे परमात्मा से संवाद कर सकता है अर्थात मौन के संबंध में यह जानना आवश्यक है कि यह वाणी के मौन से अधिक मन का होना अभीष्ट है। अत: इसके छोटे-छोटे कुछ घंटों के प्रयोग के साथ आगे बढ़ा जा सकता है। अधिकांशत: कुछ अतिउत्साही साधक नवरात्र में पूरे नौ दिन का मौन व्रत ले बैठते हैं और इशारों में दैनिक जीवन के व्यवहार को निभाने की कोशिश करते हैं, लेकिन जब इशारों में अपनी बात को नहीं समझा पाते तो मन खिन्नता से लेकर विचलन की अवस्था में चला जाता है। ऐसे में लिखकर भी अपनी बात कही जा सकती है। व्यावहारिक दृष्टि से मौन-साधना के छोटे-छोटे प्रयोग ही अभीष्ट रहते हैं, जब तक कि साधक उचित मार्गदर्शन में किन्हीं गंभीर साधनात्मक प्रयोगों में न उतर रहा हो।

युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी का आध्यात्मिक एवं सृजनात्मक जीवन मौन के ऐसे ही गंभीर प्रयोगों की शृंखला रहा। नियमित दिनचर्या में ऐसे अभ्यास के अतिरिक्त परमपूज्य गुरुदेव के छह माह से एक वर्ष के हिमालय प्रवास इसी तरह के गहन-गंभीर प्रयोग रहे। सन् 1961 के हिमालय प्रवास के दौरान गुफा-कंदराओं के एकांत में मौन

तप एवं साहित्यसृजन का प्रतिफल आर्ष वाङ्मय के रूप में फलीभूत हुआ। साथ ही सुनसान के सहचर जैसी यात्रावृत्तांत प्रधान कालजयी कृति सामने आई। इसी तरह सन् 1971 का हिमालय प्रवास गंभीर साधनात्मक प्रयोगों में बीता, जिसके बाद प्राण प्रत्यावर्तन जैसे व्यक्तित्व को रूपांतरित करने वाले साधना सत्र संपन्न हुए एवं वैज्ञानिक अध्यात्म की प्रयोगशाला ब्रह्मवर्चस से लेकर शक्तिपीठों की स्थापना की शृंखला आगे बढ़ी। सन् 1984 से 1987 के दौरान संपन्न सूक्ष्मीकरण साधना मौन में साधा गया ऐसा ही एक उच्चस्तरीय आध्यात्मिक प्रयोग था।

गायत्री महाविज्ञान, भाग—1 में पूज्य गुरुदेव ने पापनाशक एवं शक्तिवर्द्धक तपश्चर्याओं के अंतर्गत मौन तप के महत्त्व को इंगित करते हुए कहा है कि मौन से शक्तियों का क्षरण रुकता है, आत्मबल संयम होता है, दिव्य तत्त्वों की वृद्धि होती है, चित्त की एकाग्रता बढ़ती है, शांति का प्रादुर्भाव होता है तथा बहिर्मुखी वृत्तियाँ अंतर्मुखी होने से आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। प्रतिदिन या सप्ताह में अथवा मास में कोई नियत समय मौन रहने के लिए निश्चित करना चाहिए। कई दिन तक या लगातार भी ऐसा व्रत रखा जा सकता है। अपनी स्थिति, रुचि और सुविधा के अनुसार मौन की अवधि निर्धारित करनी चाहिए। मौनकाल का अधिकांश भाग एकांत में स्वाध्याय अथवा ब्रह्मचिंतन में व्यतीत करना चाहिए।

इस तरह मौन की महिमा अपरंपार है, जिसके व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक लाभ बेशुमार हैं। मौन अपने चरम में हमें जीवन के परम लक्ष्य तक से साक्षात्कार कराने में सक्षम है। अत: मौन को किन्हीं अंशों में जीवन में शामिल कर इसकी गुणवत्ता में वृद्धि कर सकते हैं तथा इसे एक सुखी, समृद्ध एवं सार्थक जीवन का आधार बना सकते हैं। ❑

हर अहंकारी, लोभी, लालची को भगवत्सत्ता के दैवी विधान से नियमानुसार फल मिलता ही है एवं अन्यों के लिए वह सबक बनता है। अहंकारी, शक्तिशाली, गर्व से चूर दुर्योधन जब अपनी अनीतियों से बाज नहीं आया तो उसे अपनी ही आँखों से अपना सर्वस्व नष्ट-भ्रष्ट होते देखना पड़ा और बड़ी असहाय अवस्था में शरीर छोड़ना पड़ा। महाबली रावण का दर्प—अहंकार उस समय नष्ट हो गया, जब उसका सारा वैभव नष्ट हो गया और वह असहाय घायल अवस्था में रणभूमि में पड़ा था।

जिसने बड़े-बड़े देशों पर विजय पाकर उन्हें बंदी बना छोड़ा था, उसे दो अवतारी क्षत्रिय पुत्रों ने कुलसहित नष्ट कर दिया। विश्वविजयी सिकंदर महान अपनी अपार संपत्ति के होते हुए भी छटपटाता हुआ मरा और उसे कोई न बचा सका। उसका दर्प—अहंकार मिट्टी में मिल गया। दुनिया की खुली पुस्तक में दैवी विधान की इस सुधार-प्रक्रिया का पाठ सरलता से पढ़ा जा सकता है।

बिना शांत मन के ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं

वर्षों की प्रचंड तप साधना के बाद आखिरकार गौतम को बोध प्राप्त हुआ और वे गौतम से गौतम बुद्ध बन गए, महात्मा बुद्ध बन गए। उनके प्रचंड तप का तेज देखते ही बनता था। उनके इस अपूर्व तेज के संपर्क में जो भी आए, वे उनके समक्ष नतमस्तक होते गए। उनके ज्ञान से कोटिश: लोगों को नवजीवन मिला और असंख्य लोगों के जीवन में नई ऊर्जा का संचार हुआ, नई दृष्टि का सृजन हुआ। वे जगह-जगह जाते और अपने अमृत ज्ञान से लोगों को आह्लादित और आनंदित करते। देखते-ही-देखते उनका यश, उनकी कीर्ति दिग्दिगंत तक फैलने लगी और उनके शिष्यों व अनुयायियों की संख्या भी बढ़ती गई।

गौतम बुद्ध के कई शिष्य बने। आनंद उन्हीं में से एक थे। वे सब कुछ त्यागकर, ज्ञानप्राप्ति की आशा में तथागत की शरण में आए थे। वे तथागत से ज्ञान पाने हेतु हमेशा आतुर और उत्सुक रहा करते थे। वे तथागत से हमेशा यही प्रश्न किया करते थे कि भगवन्! मुझे ज्ञान की प्राप्ति कब होगी? मुझे बोध कब होगा? मैं अपने जीवनलक्ष्य को कब और कैसे प्राप्त कर सकूँगा? भगवन्! मेरा मन बहुत अधीर हुआ जा रहा है। प्रभु! मुझे आप यह बताएँ कि मुझे ज्ञान की प्राप्ति होगी भी या नहीं? यदि हाँ तो कब? आनंद के इन प्रश्नों को सुनकर तथागत हमेशा यही उत्तर देते थे कि उचित समय आने पर सब कुछ होगा और मैं तुम्हारे प्रश्नों का सही उत्तर भी दूँगा।

संयोगवश एक दिन आनंद और तथागत प्रव्रज्या करते हुए, भ्रमण करते हुए कहीं चले जा रहे थे और अचानक वे दोनों एक झरने के पास पहुँच गए। उसी समय कुछ पशु उस झरने में नहाकर बाहर निकल रहे थे। वे दोनों वहाँ से कुछ दूर आगे निकल आए और एक पेड़ की छाँह में बैठ गए। तथागत कुछ देर मौन रहे, फिर बोले—"वत्स आनंद! पीछे वाले झरने से जहाँ से हम लोग अभी-अभी होकर आए हैं, वहाँ से जरा पानी ले आओ। मुझे अभी जोर की प्यास लगी है और मैं झरने का पानी पीकर अपनी प्यास बुझाना चाहता हूँ।"

आनंद कमंडलु लेकर झरने की ओर चल पड़े। झरने के पास पहुँचकर आनंद ने देखा कि झरने का पानी तो बिलकुल गंदा आ रहा है। मन-ही-मन वे सोचने लगे—मैं अपने गुरुदेव को, अपने आराध्य को, प्रभु को, गंदा जल तो नहीं पिला सकता। फिर मैं क्या करूँ? आनंद वहाँ से वापस तथागत के पास आ गए और बोले—"भगवन्! झरने का पानी तो बिलकुल गंदा है। वह तो पीने लायक है ही नहीं। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं कुछ दूर जाकर नदी से पानी ले आऊँ?" तथागत बोले—"नहीं, वत्स! तुम झरने से ही पानी लाओ। झरने का पानी अब ठीक हो गया होगा।"

आनंद फिर से झरने से पानी लेने चल दिए, पर इस बार झरने का पानी बिलकुल साफ तो नहीं था, परंतु पहले से कम गंदा अवश्य था। फिर भी अभी वह पानी पीने लायक तो नहीं था। सो आनंद इस बार भी बिना पानी लिए ही तथागत के पास लौट आए और बोले—"भगवन्! इस बार पानी पहले से थोड़ा साफ तो था, लेकिन अभी भी पीने लायक तो नहीं ही है। पानी तो अब भी गंदा ही है। भगवान! नदी बहुत दूर नहीं, आप मुझे आज्ञा दें, मैं अभी आपके लिए नदी से ही ताजा, मीठा, शीतल पानी लाए देता हूँ।" तथागत फिर बोले—"वत्स! इसकी कोई आवश्यकता नहीं। तुम थक गए होगे, अभी थोड़ी देर यहाँ बैठकर विश्राम कर लो। फिर ले आना। तब तक झरने का पानी पूरी तरह साफ और पीने लायक हो ही जाएगा।"

आनंद मन-ही-मन दु:खी थे कि प्रभु प्यासे हैं, फिर भी मुझे नदी से साफ, शीतल, मीठा जल लाने क्यों नहीं दे रहे? पर गुरु की आज्ञा का पालन तो करना ही था। सो वे चुप रहे। फिर थोड़ी देर बाद वे पुन: पानी लेने झरने की ओर चल पड़े। जैसे ही वे झरने के पास आए, तो खुशी से उछल पड़े; क्योंकि इस बार झरने का पानी बिलकुल साफ हो चुका था और अब पीने लायक भी था। आनंद ने खुशी-खुशी अपने कमंडलु में झरने का पानी भरा और तथागत के पास पहुँच गए।

तथागत ने पूछा—''अब पानी कैसा है वत्स?'' आनंद ने प्रसन्न मन से उत्तर दिया—''अब तो बिलकुल स्वच्छ और पीने लायक है। भगवन्! आप स्वयं ही देख लीजिए। लेकिन भगवन् यह चमत्कार हुआ कैसे? झरने का गंदा पानी अचानक स्वच्छ कैसे हो गया, निर्मल कैसे हो गया?''

तथागत मुस्कराए और बोले—''वत्स! यह कोई चमत्कार नहीं। यह तो प्रतीक्षा का फल है। कुछ देर पूर्व जानवरों ने पानी में हलचल की थी, जिससे नीचे की धूल और मिट्टी ऊपर आ गई और पानी गंदा हो गया। जब पहली बार तुम झरने पर गए, उस समय धूल और मिट्टी पानी में घुले होने से पानी गंदा दिखाई दे रहा था। जब तुम दूसरी बार झरने पर गए तब मिट्टी नीचे परत पर बैठने लगी और इससे पानी पहले से कुछ कम गंदा दीख रहा था और जब तुम तीसरी बार गए, तब तक मिट्टी नीचे सतह में पूरी तरह जम गई और इससे पानी पूरी तरह स्वच्छ, निर्मल और पारदर्शी हो गया था। यही तुम्हारे उस प्रश्न का उत्तर है, जो तुम मुझसे अक्सर पूछा करते थे।'' आनंद बोले—''वह कैसे भगवन्! उस झरने के पानी के स्वच्छ होने से मेरे प्रश्न का क्या संबंध है?''

तथागत बोले—''आनंद! हमारा मन भी उसी झरने की तरह है। जिसमें पल-पल कुविचारों के कितने ही पशु उछल-कूद मचाते हैं। इन कुविचारों और कुसंस्कारों के कारण हमारा मन अपवित्र और अस्थिर हो गया है। तप एवं साधना के द्वारा हम उन्हीं कुविचारों और कुसंस्कारों के पशुओं को मन से बाहर करते हैं और फिर ध्यान के निरंतर अभ्यास से मन के स्थिर, शांत और पवित्र होने की प्रतीक्षा करते हैं।''

भगवान बुद्ध आगे बोले—''जब तक मन स्थिर, शांत और पवित्र नहीं हो जाता, तब तक ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए आनंद! मन के शांत और पवित्र होने तक तुम्हें धैर्य रखना होगा; क्योंकि साधना में निरंतरता और धैर्य का होना आवश्यक है। जब ध्यान की गहराई में उतरकर तुम्हारा मन पूरी तरह स्थिर, शांत और पवित्र होकर समाधिस्थ हो जाएगा, तब तुम्हें स्वतः ही आत्मज्ञान की उपलब्धि हो जाएगी।''

आनंद को साधना का मर्म समझ में आ गया। वे तथागत के कहे अनुसार साधना-पथ पर चल पड़े। साधना में अनियमितता और अधीरता बहुत ही हानिकारक हैं, इसलिए साधकों को चाहिए कि वे भी अपने आराध्य, अपने गुरु के बताए मार्ग पर धैर्यपूर्वक चलते रहें, साधना में नियमितता व धैर्य बनाए रखें। यदि हम ऐसा कर सके, तो निश्चित ही एक दिन हमारी साधना भी अवश्य सफल होगी, इसमें कोई भी संशय नहीं है। ❑

राजा जनक और ऋषि याज्ञवल्क्य के बीच ज्ञानचर्चा चल रही थी। जनक ने पूछा—''सूर्य अस्त होने के बाद अंधकार के घनेपन में कैसे मार्ग ढूँढ़ा जाए?'' याज्ञवल्क्य ने कहा—''सितारे रास्ता बता सकते हैं।'' जनक ने फिर पूछा—''यदि बादल छाए हों और दीपक का प्रकाश भी उपलब्ध न हो तो फिर क्या करना होगा?'' ऋषि याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—''तब सूझ-बूझ के सहारे रास्ता ढूँढ़ना चाहिए। विवेक का प्रकाश हर किसी के पास है और वह कभी नहीं बुझता।''

वास्तव में चाहे बाहर से कितने ही प्रयास किए जाएँ, वे उपचार तभी सार्थक हैं; जब अंतः की विवेकशक्ति जाग्रत हो। यह शक्ति हर किसी के पास है। अपने सार्थक उपदेश व आचरण से इस शक्ति को ही ज्ञानवान व लोकसेवी जगाते हैं।

पर्व विशेष

सृष्टि के जन्म का महोत्सव

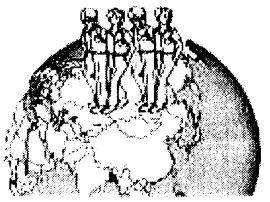

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अर्थात सृष्टि के जन्मोत्सव के अवसर पर संबंधित बिंदुओं पर विमर्श—सृष्टि का जन्मदिन मनाने की दिशा में एक अनूठी पहल है। ब्रह्मपुराण के अनुसार—**'चैत्रमासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेहनि'** अर्थात चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की तो इस सृष्टि-जन्मोत्सव को क्यों न हम सब सृष्टि जन्म महोत्सव का रूप दें। नवसंवत्सर, गुड़ी पड़वा या नववर्ष प्रतिपदा मनाकर हम विक्रम संवत् 2077 में प्रवेश कर रहे हैं। इस वर्ष के संवत्सर का नाम **प्रमादी** है।

विक्रम संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य जैसे प्रजावत्सल नरेश से इसका प्रत्यक्ष संबंध है। शकों पर विजयप्राप्ति के उपलक्ष्य में महाराजा विक्रमादित्य ने भौगोलिक कर्क रेखा एवं क्षिप्रा नदी तट पर अवस्थित लोकतीर्थ उज्जैन में विक्रम संवत् का आरंभ किया था। वहीं उन्होंने कालगणना केंद्र के लिए श्रेष्ठ स्थान मानकर कालद्योतक स्वयंभू श्री महाकालेश्वर का मंदिर भी स्थापित किया था। वे अनादि काल से कालगणना बिंदु रहे हैं।

हमारी शास्त्रीय व्यवस्थाओं के अनुसार संवत्सर आरंभ करने का अधिकार उसी महाराजा को प्राप्त रहा है, जिसके राज्य में किसी व्यक्ति पर किसी का आर्थिक ऋण न हो अर्थात कोई भी ऋणी कहलाने के रूप में न रहता हो। ऋषिऋण, देवऋण, पितृऋण आदि के रूप में तो व्यक्ति ऋणी रहता ही है, किंतु आर्थिक दृष्टि से कोई किसी अन्य का कर्जदार न हो।

अनुमानतया 2076 वर्ष पूर्व मालवाधीश सम्राटश्रेष्ठ विक्रमादित्य ने अपने राजकोष से इस राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक कर्जमुक्ति दिलाकर नवसंवत्सर जन्मदाता होने का अपूर्व गौरव प्राप्त किया था, किंतु हम परस्पर फूट और अकर्मण्यता को नहीं भुला सके और परिणामस्वरूप अपनी गौरव गरिमा के अभाव में मुक्त जीवन के आनंद से वंचित हो गए तथा मानसिक दासता के कारण हमने भी एक जनवरी को वर्ष का आरंभ मान लिया; जबकि भारत के नववर्ष का शुभारंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से ही होता है, जो रबी की फसल घर में आ जाने का कृषिप्रधान जनता में हर्षोल्लास का समय है। यह विश्वभर के कलेंडरों का जन्मदाता है; क्योंकि अँगरेजी कलेंडर वास्तव में भारतीय कलेंडर की नकल मात्र है। एक तथ्य और भी है कि भारतीय कलेंडर भारतीय त्योहारों और पर्वों की भाँति गणित पर ही आधारित रहा है।

ऋग्वेदकालीन भारतीय कालगणकों ने अपनी मेधा से तिथि, माह, संक्रांति तथा उनका प्रभाव देखते हुए संवत् की संरचना और नक्षत्रीय स्थितियाँ जान ली थीं। ऋग्वेद संहिता 1/164/11 में इस संदर्भ में कहा गया है—

द्वादशारं नहि तज्जराय
वर्वर्ति चक्रम परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो
अत्र सप्त शतानि विंशतिश्चतस्थुः ॥

अर्थात—सव्यात्मक आदित्य का बारह आरों वाला चक्र द्युलोक के चारों ओर सतत भ्रमण करते हुए भी नष्ट नहीं होता है। हे अग्नि! इस चक्र पर युगों के 720 जोड़ आरूढ़ हुए रहते हैं अर्थात सूर्यदेव के रथ का चक्र ही एक पूर्ण वर्ष है और उसके 12 आरे ही 12 महीने हैं। उसके 720 जोड़े 360 दिन और 360 रातें हैं। इस प्रकार एक वर्ष आकार ग्रहण करता है।

वैदिक युग के खगोलविदों ने 27 चांद्र नक्षत्रों की व्यवस्था बनाई थी। प्रत्येक खंड के सवा दो भागों को राशि की संज्ञा दी गई। इस प्रकार उन्होंने अंतरिक्ष में 27 चांद्र नक्षत्र तथा 12 राशियों की स्थापना करके हर राशि में 30 अंश, हर नक्षत्र में 13 अंश तथा 10 कलाओं के प्रमाण से चंद्रमार्ग को 360 अंशों (दिनों) में विभक्त कर लिया था।

उन नक्षत्रों के आधार पर, जो कि उन्हें पूर्णचंद्र यानी पूर्णिमा के दिन के अंतिम दौर में दिखाई देता था, उस पर भी महीनों का नामकरण कर दिया गया। जैसे—चित्रा नक्षत्र के निकट होने पर चैत्र, कृत्तिका से कार्तिक और विशाखा से वैशाख आदि। पुरुषोत्तम मास या अधिमास की स्थिति से

भी वे अपरिचित नहीं रहे थे। ऋग्वेद संहिता 1/25/8 में इस तथ्य का स्पष्ट संकेत है—

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते॥

अर्थात—वरुण बारह महीनों और उनसे उत्पन्न होने वाले प्राणियों को जानता है। वह अधिक मास को भी जानता है। इस तरह स्पष्ट है कि पुरुषोत्तम मास वैदिक युग से ही भारतीय संवत्सर या कलेंडर का एक अविभाज्य भाग रहा है। वैदिक खगोलशास्त्रियों ने यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि चंद्रमा अपने तय मार्ग से प्रतिवर्ष 11 अंश पीछे हटकर आता है। इसलिए चांद्रमास का ऋतुओं से समान संबंध रखने के उद्देश्य से उन्होंने प्रत्येक तीन चांद्रवर्ष व्यतीत हो जाने पर एक अधिक चंद्रमास को उसमें जोड़ देने की व्यवस्था रखी थी। इससे सौरवर्ष का तारतम्य स्थापित हो गया और सौर मास के प्रथम दिवस को संक्रांति नाम दे दिया गया। साथ ही सूर्य व चंद्रमा के मार्ग में 12 अंशों के अंतर के समय को तिथि कहा गया।

पुरातन भारतीय कालगणना पद्धति के अनुसार काल के दो सूक्ष्मतम प्रतिमान तय थे, जो त्रुटि और तत्परस कहे जाते हैं। एक दिन-रात में 17 अरब, 49 करोड़, 60 लाख त्रुटियाँ या 46 अरब, 65 करोड़, 60 लाख तत्परस होते हैं। नवसंवत्सर हमारे समक्ष ऊर्जा के अक्षय स्रोत खोलकर हमारा आह्वान कर रहा है कि हम स्वयं को जानें। मानवीय संस्कृति के विकास में वेद ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में हिमालय की भाँति गगनचुंबी और जन-जन की प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। जीवन की समस्त गतिविधियों में ओज, तेज, आशा, उत्साह, ऊर्जा की सतत प्रवाहिनी गंगा जैसी अनेक सरिताएँ इनमें प्रवाहमान हैं।

वे कर्मनिष्ठ मानव शरीर को, प्राणों को, चिंतनशक्ति को रस-सिंचित करती रहती हैं। नैराश्य, भय, अकर्मण्यता, पलायनवृत्ति, अव्यवस्था, कंजूसी आदि का वहाँ पर किंचित्मात्र भी आभास तक नहीं होने देती हैं। चिंतकों ने मनुष्य की प्रतिभा पर संपूर्ण निष्ठा से विश्वास व आस्था व्यक्त की है। उन्होंने स्वयं का महत्त्व बताते हुए कहा—''हे मनुष्यो! तुम स्वयं ही अपने भाग्य के निर्माता हो, तुम सूर्य की भाँति स्वयं प्रकाशित होकर जगत के लिए अनुकरणीय बनो। उठो, जागो और लक्ष्यपूर्ति होने तक चलते रहो।''

चरैवेति-चरैवेति—यही मंत्र है नवसंवत्सर की प्रथम सूर्य-रश्मियों का। तुम स्वयं को मानवीय कीर्तिमान का उदाहरण बनाओ। अपने प्राप्तव्य की प्राप्ति हेतु निरंतर बढ़ते रहो। इस ब्रह्मांड में जो कुछ भी प्रेय और श्रेय है, वही तुम्हारा प्राप्य है। तुम अमृतपुत्र हो, इस तत्त्व की रक्षार्थ नवसंवत्सर में व्रत लो। नववर्ष की चेतना जाग्रत करती वेला में आइए, हम सब मिलकर विचार करें—'हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी ?' कभी हमारा देश भारत जगद्गुरु पद पर प्रतिष्ठित था, किंतु पता नहीं कब, कैसे और किन सामाजिक झंझावातों तथा राजनीतिक परिस्थितियों में ऐसा नकारात्मक समय आया, जिसमें निराशावादी विचारधारा ने हमारे मन-मस्तिष्क को आच्छादित कर चेतना को कुंद कर दिया। हम पराये चिंतन को बिना सोचे-समझे अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व देने लगे। यहाँ तक कि हमें अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त ज्ञान एवं विज्ञान से अरुचि हो गई। इसलिए निरंतर कर्मनिष्ठ रहकर भी आनंद की पवित्रता से हम अछूते ही रह गए।

एक प्रेरणास्पद गद्यांश है—सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते सफलता का ही चिंतन करो। सफलता ही तुम्हारा परम उपास्य है। आँखों से सफलता को जरा भी विलग न होने दो। तन से सदा सफलता का आचरण करो और मन से करो सदैव सफलता का मनन। सफलता से बड़ी कोई सिद्धि नहीं। इधर हमारी शिक्षा-दीक्षा अव्यवस्थित होते ही मात्र पाश्चात्य देशों की श्रेष्ठ मानने की अवधारणा बलवती होती चली गई। ऐसे में खाओ-पियो और मौज करो की संस्कृति अपने पैर पसारने लगी। काम के लिए तन झुकाना, हाथ-पैर काले करना या पसीना बहाना हमें अच्छा नहीं लगता है।

काल पूछ रहा है कि जब उत्पादकता का स्तर सुधरेगा नहीं, तो बात बनेगी कैसे। उपभोगी संस्कृति के हाथों स्वयं को सौंपकर हम कहीं एक और नवीन दासता के शिकंजे में तो पूरे परिवेश को नहीं ढकेल रहे हैं। आवश्यकता है कि आज इस विषय पर चिंतन करें कि इस वेला में हम समाज, परिवार, राष्ट्र और स्वयं से क्या अपेक्षाएँ रखते हैं और लेने के नाम पर क्या बटोर लेना चाहते हैं। हम नववर्ष की इस वेला में तेज का चिंतन करें। अपनी संवेदना का, चेतना का विस्तार करें। जब यह होगा तब हम मनुष्यों के साथ अन्य प्राणी और समूची प्रकृति, सारा पर्यावरण एक होकर सृष्टि के जन्म का महोत्सव उल्लासपूर्वक मना सकेंगे। ❑

ईश्वर-अंश जीव अविनाशी

यह सत्य है कि आत्मचेतना, परमात्मचेतना का ही अंश है। जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है। शरीर तो अनित्य और परिवर्तनशील है; पर आत्मा नित्य, सनातन व पुरातन है। अपने प्रिय शिष्य व सखा अर्जुन के समक्ष भगवान श्रीकृष्ण आत्मा के स्वरूप को कुछ इस प्रकार प्रकाशित करते हैं—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ —*गीता, 2/20*

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ —*गीता, 2/22*

अर्थात—यह आत्मा, अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त होता है। कठोपनिषद् के प्रस्तुत श्लोक में यमदेव नचिकेता की सच्ची श्रद्धा, निष्ठा व जिज्ञासा को देखते हुए उसके समक्ष आत्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए कुछ ऐसा ही कहते हैं—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ —*1.2.18*

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुम्
हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो
नायम् हन्ति न हन्यते॥ —*1.2.19*

अर्थात—यह आत्मा न तो जन्मता है और न मरता ही है। यह न तो स्वयं किसी से हुआ है और न इससे कोई भी हुआ है। अर्थात यह न तो किसी का कार्य है और न कारण ही है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है और शरीर के नाश किए जाने पर भी इसका नाश नहीं किया जा सकता। यदि कोई मारने वाला व्यक्ति स्वयं को मारने में समर्थ मानता है, और यदि कोई मारा जाने वाला व्यक्ति अपने को मारा गया समझता है तो वे दोनों ही आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा न तो किसी को मारता है और न मारा ही जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विविध शास्त्रों में आत्मा के स्वरूप का वर्णन है, पर आत्मा की इन विविध विशेषताओं के आलोक में हमारे मन में कुछ सवाल सहज खड़े हो उठते हैं। जैसे कि यदि आत्मा अविकारी है तो आत्मा को धारण करने वाले जीव में, काम, क्रोध, मद, मोह, दंभ, दुर्भाव, द्वेष आदि विकार क्यों और कैसे आते हैं? यदि आत्मा नित्य है तो जीवात्मा को, जीव को इसका सहज आभास भला क्यों नहीं होता है? यदि आत्मा मुक्त है, जीवन-मरण से मुक्त है तो फिर जीव को, जीवात्मा को मृत्यु का भय क्यों सताता है? यदि आत्मा अमल है, निर्मल है, तो फिर जीव में बुरे विचार क्यों और कैसे आते हैं? यदि आत्मा ब्रह्म का अंश है तो जीव को इसकी अनुभूति क्यों नहीं होती? यदि जीव ईश्वर का अंश है, सुख की राशि है तो फिर जीवनभर जीव नानाविध दुःखों से क्यों घिरा रहता है? ऐसे अनेक सवाल हमारे मन में सहज ही उठते हैं, जो स्वाभाविक भी हैं और विचारणीय भी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आत्मा मुक्त, नित्य और शाश्वत है। जैसे सूर्य की हर किरण में सूर्य का गुण है, सागर की हर बूँद में सागर है, वैसे ही ईश्वर का अंश होने के कारण हर जीव में ईश्वर का अंश है, ईश्वर का गुण है। अस्तु जीवात्मा भी, जीव भी—ब्रह्म की तरह ही अविनाशी है, नित्य है, मुक्त है। ब्रह्म की तरह जीव भी अमल है, यानी मल या विकाररहित है। जीव जब ब्रह्म से उसके अंश के रूप में धरती पर आता है तो वह अपने मूल की तरह ही अविकारी अर्थात विकाररहित होता है। जिस तरह पानी की बूँद जब अपने मूलस्रोत बादल से अलग होती है, तो वह

पूरी तरह शुद्ध होती है, पारदर्शी होती है; पर धरती का स्पर्श पाते ही वह मटमैली हो जाती है, उसी प्रकार जीव के धरती पर आते ही, शरीर धारण करते ही माया उससे लिपट जाती है और माया से मिलते ही वह मैला हो जाता है। माया अर्थात विकार के संपर्क में आते ही वह अपने निजस्वरूप से विलग हो जाता है। इस संबंध में मानसकार ने भी क्या खूब कहा है—

भूमि परत भा ढाबर पानी।
जनु जीवहि माया लपटानी॥

अर्थात—बारिश की बूँदें पृथ्वी पर गिरते ही मैली हो गईं, मानो शुद्ध जीव माया से लिपटकर मैला हो गया हो।

वास्तव में जगत के समस्त प्रपंच का नाम ही माया है। समस्त विकार ही माया है। अज्ञान ही माया है, अविद्या ही माया है। माया के दो कार्य हैं—एक सत्य पर परदा डालना और दूसरा असत्य को स्थापित करना। इसलिए माया के संपर्क में आते ही जीव अनित्य को नित्य और नित्य को अनित्य समझने लगता है। सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझने लगता है। जीव स्वयं को शरीर मानने लगता है। इसलिए जीव—शरीर व मन की क्रियाओं को स्वयं की क्रियाएँ मानने लगता है। इस प्रकार शरीर एवं मन के द्वारा सुख-दुःख की अनुभूति को भी अपनी अनुभूति समझने लगता है और इस प्रकार स्वयं को बंधनग्रस्त कर लेता है। प्रस्तुत चौपाइयों में मानसकार इसे कुछ इस प्रकार प्रकाशित कर रहे हैं—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं।
बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
तब ते जीव भयउ संसारी।
छूट न ग्रंथि न होई सुखारी॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥
जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी।
ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी॥

अर्थात—जीव ईश्वर का अंश है। अतएव वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है, पर वह माया के वशीभूत होकर तोते और वानर की भाँति अपने आप ही बँध गया। इस प्रकार जड़ और चेतन में ग्रंथि (गाँठ) पड़ गई। यद्यपि वह ग्रंथि (बंधन) मिथ्या ही है, पर उससे मुक्त होने में कठिनता तो है।

उस बंधन में बँध जाने के बाद से ही जीव संसारी हो गया, जन्मने-मरने वाला हो गया और अब न तो वह बंधन से मुक्त होता है और न ही वह सुखी होता है। जीव के हृदय में अज्ञानरूपी अंधकार विशेष रूप से छा रहा है। इससे उसे वह बंधन, वह ग्रंथि दीखती ही नहीं। फिर वह उस बंधन से मुक्त कैसे हो? हाँ! जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग उपस्थित कर देते हैं तब वह ग्रंथि, वह बंधन कदाचित् टूट पाता है। वेद-पुराणों ने भी उससे मुक्त होने के कई उपाय बताए हैं।

इस संबंध में आचार्य शंकर ने भी बहुत सारगर्भित बातें कही हैं—

माया मायाकार्यं सर्वं
महदादि देहपर्यन्तम्।
असदिदमनात्मकं
त्वं विद्धि मरुमरीचिकाकल्पम्॥

—विवेकचूड़ामणि, 125

अर्थात—माया और महत् तत्त्व से लेकर देहपर्यंत माया के संपूर्ण कार्यों को तू मरुमरीचिका के समान असत् और अनात्मक जान।

जैन दर्शन का भी यही मत है कि जीव में स्वभावतः ही अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति और अनंत आनंद आदि पूर्णताएँ निहित हैं, परंतु बंधन की अवस्था में ये सारी पूर्णताएँ ओझल हो जाती हैं, अप्रकट हो जाती हैं। जैसे मेघ सूर्य के प्रकाश को ढक लेता है, वैसे ही बंधन भी आत्मा के स्वाभाविक गुणों को ढक लेता है और अज्ञान के बँधन से बँधते ही जीव में क्रोध, मान, लोभ और माया आदि वासनाएँ निवास करने लगती हैं, फिर जीव सुख-दुःख और जीवन-मरण के चक्र में पड़ा रहता है।

इस संबंध में युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जी का बड़ा ही स्पष्ट मत है कि जीव के उसके मूलस्वरूप में प्रकट न होने में मुख्य कारण उसमें निर्मलता का अभाव है। माया, अविद्या या अज्ञान—सब इसी के नाम हैं। इसी के कारण वह अपने मूलस्वरूप को पहचानने में असमर्थ है। गंदे जल में सूर्य का प्रतिबिंब नहीं दिखाई देता, दर्पण मैला हो तो मुखाकृति साफ नहीं दिखाई देती। जीव

मायाग्रस्त, अविद्या या मलग्रस्त हो तो उसकी भी ऐसी ही दशा होती है। वह शाश्वत, मुक्त और अमर जीवात्मा माया या अज्ञान के वश में होकर वैसी ही क्रियाएँ करता रहता है, जैसे बंदर नचाने वाला बंदर को बाँधकर नचाता फिरता है और वह नाचता फिरता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जीव जब तक अज्ञान के बंधन में है, माया के बंधन में है; तब तक वह सुख-दुःख व कर्मसंस्कारों के बंधन में है, तो फिर इस बंधन से मुक्ति का मार्ग क्या है? जो बंधन अज्ञान से उपजा है, उसका नाश निश्चित ही ज्ञान से ही संभव है; क्योंकि अज्ञान का नाश ज्ञान से ही संभव है, अविद्या का नाश विद्या से ही संभव है।

इस अविद्या, अज्ञान व माया के बंधन से मुक्ति हेतु विविध शास्त्रों व योगियों ने विविधमार्ग बताए हैं। आचार्य शंकर ने इस हेतु **'साधन-चतुष्टय'** का प्रतिपादन किया है। जो कि इस प्रकार है—प्रथम है नित्यानित्य-वस्तु विवेक अर्थात साधक को नित्य और अनित्य वस्तुओं में भेद करने का विवेक होना चाहिए। द्वितीय साधन है—इहामुत्रफलभोग विराग अर्थात साधक को लौकिक और पारलौकिक भोगों की कामना का परित्याग करना चाहिए। तीसरा साधन है—शमदमादि साधन-संपत्ति। साधक को मन-संयम, इंद्रिय-संयम आदि का अभ्यास करना चाहिए। शास्त्रों के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए अर्थात शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। चतुर्थ साधन है—मुमुक्षुत्वं अर्थात साधक में मोक्ष प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प होना चाहिए।

जो साधक इन चार साधनों से युक्त होता है, उसे किसी ऐसे सद्गुरु के चरणों में शरण लेनी चाहिए; जिन्हें ब्रह्मज्ञान की अनुभूति हो चुकी हो। गुरु के साथ साधक को श्रवण, मनन और निदिध्यासन की प्रणाली का सहारा लेना पड़ता है। गुरु के उपदेशों को सुनने को श्रवण कहा जाता है। उनके उपदेशों पर तार्किक दृष्टि से विचार करने को मनन कहा जाता है और सत्य पर निरंतर ध्यान रखना ही निदिध्यासन है।

इस प्रक्रिया से गुजरने के बाद साधक के पूर्वसंचित संस्कार नष्ट हो जाते हैं, जिससे ब्रह्म की सत्यता में उसे अटल विश्वास हो जाता है। तब माया, अज्ञान के बंधन से मुक्त होते ही उसे अपने वास्तविक सत्-चित्-आनंदस्वरूप का बोध हो जाता है। वह ब्रह्म साक्षात्कार कर लेता है और फिर वह स्वयं ही कह उठता है—अहं ब्रह्मास्मि। यह अंतर्ध्वनि उसके चित्त में अनवरत गूँजने लगती है। फिर वह पल-पल ब्रह्मानुभूति करता हुआ, ब्रह्मानंद में ही मस्त और अलमस्त रहता है।

वहीं प्रस्तुत चौपाइयों में मानसकार कहते हैं—

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा।
मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा।
उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा॥

अर्थात—'सोऽहमस्मि' (वह ब्रह्म मैं हूँ) यह जो अखंड वृत्ति है, वही उस ज्ञानदीपक की परम प्रचंड दीपशिखा (लौ) है। इस प्रकार आत्मानुभव के सुख का सुंदर प्रकाश फैलता है, तब संसार के मूल भेदरूपी भ्रम का नाश हो जाता है और महान बलवती अविद्या के परिवार मोह आदि का अपार अंधकार मिट जाता है। तब वही विज्ञानरूपिणी बुद्धि आत्मानुभवरूपी प्रकाश को पाकर हृदयरूपी घर में बैठकर उस जड़-चेतन की गाँठ को खोलती है।

एक छोटे से बीज में एक विशाल वटवृक्ष समाया हुआ होता है। वह छोटा-सा बीज ही एक विशाल वटवृक्ष को धारण किए रहता है, पर उस छोटे से बीज से वह विराट वृक्ष तभी प्रकट होता है; जब उस बीज को अनुकूल जमीन में, भूमि में बोया जाता है, रखा जाता है। अनुकूल जलवायु पाते ही वही बीज अंकुरित होता है, और देखते-ही-देखते एक विशाल वृक्ष के रूप में खड़ा हो जाता है, प्रकट हो जाता है।

उसी प्रकार हर जीव में ब्रह्म का बीज है, ब्रह्म का अंश है और जप, तप, योग, ध्यान, ज्ञान की उर्वर भूमि-अनुकूल जलवायु पाते ही वही जीव—नर से नारायण व मानव से माधव बनने के उच्चतम शिखर तक पहुँच जाता है। उस शिखर को पाकर ही, छूकर ही जीव को शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। ब्रह्म को पाकर ही जीव को ब्रह्मानंद की अनुभूति होती है। ब्रह्म को वेदों ने 'रसो वै सः' कहा है अर्थात ईश्वर या ब्रह्म, रस यानी आनंद का स्वरूप है। ईश्वर सुख का सागर है और इसी सुख के सागर से हमारी उत्पत्ति हुई है। जिस वस्तु की जहाँ से उत्पत्ति होती

है, उसे पाकर, उससे मिलकर, उस उद्गमस्थल को पाकर, छूकर, मिलकर, उसे अपार सुख का अनुभव होता है।

दीपक की लौ में जो अग्नि है, जो प्रकाश है वह सूरज का ही अंश है। इसलिए दीपक की लौ हमेशा अपने उद्गमस्थल से मिलने को आतुर व ऊर्ध्वमुखी होती है; क्योंकि उसे ऊपर उठने में, अपने आराध्य की ओर जाते रहने, उठते रहने में ही आनंद की अनुभूति होती है। जल की उत्पत्ति सागर से ही होती है। इसलिए नदियाँ स्वभावत: समुद्र की ओर दौड़ती-भागती दीख पड़ती हैं; क्योंकि जल की हर बूँद, अपने उद्गम, अपने आराध्य की ओर दौड़ते-भागते हुए, उसमें तिरोहित होते हुए ही आनंदित रहती है। अस्तु हमें भी गुरुज्ञान, सत्संग, ध्यान, जप आदि साधनों के द्वारा अपने आराध्य से अपने उद्गमस्थल से मिलने को आतुर, आकुल और व्याकुल रहना चाहिए, तभी जीव का ब्रह्म से मिलन संभव है और परमानंद भी इसी में है। ❑

एक राजा अपने मंत्री के साथ आखेट पर निकले। वन में हिरन को देख राजा ने तीर प्रत्यंचा पर चढ़ाया ही था कि जंगल में से एक सूअर निकला और राजा को धक्का देकर भागा। इस अप्रत्याशित आघात के कारण तीर की नोक से उनकी उँगली कट गई। रक्त बहने लगा और राजा व्याकुल हो उठे। मंत्री की ओर देखने पर मंत्री बोले—''राजन्! भगवान जो करता है, अच्छे के लिए करता है।'' राजा पीड़ा में थे ही, मंत्री की बात सुन क्रोध से भर उठे। उन्होंने मंत्री को आज्ञा दी कि वो उसी समय उनका साथ छोड़ अन्य राह पकड़ लें। मंत्री ने आदेश को सहर्ष स्वीकार किया और भिन्न दिशा में निकल पड़े।

इधर राजा थोड़ा आगे बढ़े ही थे कि उन्हें नरभक्षियों ने घेर लिया। वे उन्हें पकड़कर अपने सरदार के पास ले चले। राजा को बलि देने की तैयारी हो ही रही थी कि उनके पुजारी ने राजा की कटी उँगली देखी तो कहा—''इसका तो अंग भंग है, इसकी बलि स्वीकार नहीं हो सकती।'' राजा को जीवनदान मिला तो उन्हें तुरंत मंत्री की याद आई। सोचने लगे कि मंत्री ठीक कहते थे—भगवान जो करता है, अच्छे के लिए ही करता है। मुझे उनका साथ नहीं छोड़ना चाहिए था।

ऐसा सोचते वे आगे बढ़ रहे थे कि उन्हें मंत्री नदी किनारे भजन करते दिखाई पड़े। राजा ने प्रेमपूर्वक मंत्री को गले लगाया और उन्हें सारा घटनाक्रम कह सुनाया। तदुपरांत राजा ने उनसे प्रश्न किया—''मेरी उँगली कटी, इसमें भगवान ने मेरा भला किया, पर तुम्हें मैंने अपमानित करके भगाया, इससे भला तुम्हारा क्या भला हुआ?'' मंत्री मुस्कराए और बोले—''राजन्! यदि आपने मुझे भिन्न राह पर न भेजा होता और मैं आपके साथ होता तो अंग भंग के कारण नरभक्षी आपकी बलि न देते, पर मेरी बलि चढ़नी सुनिश्चित थी। इसलिए भगवान जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं।''

वृक्षों से मैत्री करें

वृक्ष हमारे मित्र के समान हैं, ये हमें जीवनोपयोगी बहुत सारे साधन प्रदान करते हैं। वृक्षों का सान्निध्य हमारी ध्यान-साधना में भी सहायक होता है। वृक्ष हमें अपने जीवन से भाँति-भाँति की सत्प्रेरणाएँ देते हैं। यदि हम वृक्षों से मैत्री कर लें, उन्हें अपना मित्र बना लें, तो निश्चित रूप से हम उनकी संवेदनाओं को अनुभव कर सकेंगे और अपनी संवेदनाओं को उन तक पहुँचा सकेंगे। वृक्षों से मैत्री एक तरह से प्रकृति के साथ जीवन के सामंजस्य व तालमेल का प्रतीक है, जो हमारे जीवन को सहज व प्राकृतिक बनाता है तथा कृत्रिमता व बनावटीपन से दूर ले जाता है।

मैत्री अपने आप में एक गहन भाव है। मैत्री का भाव हमें कई दुर्गुणों से यानी ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य जैसे अनेक दोषों से मुक्त करता है और हमारी चेतना को अनंत विस्तार देता है। मैत्री का भाव हमें स्वार्थ और अहं से भी मुक्त करता है। अगर मैत्री अबाध और अबाधित रहे, मैत्री में कोई बाधा न हो तो हम देखेंगे कि मैत्री का दायरा बढ़ता ही चला जाता है। फिर सब कुछ अपना लगने लगता है। जब महर्षि पतंजलि यम-नियम के सूत्र समझाते हैं तो अहिंसा के बारे में बताते हुए कहते हैं—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥

(पा.यो.सू. 2/35)

अहिंसाभाव की पूर्णतया दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस व्यक्ति के आस-पास के सभी लोग वैर करना भूल जाते हैं, तब उसके आस-पास, उस सन्निधि में कोई वैरपूर्ण नहीं रह जाता। सभी प्रेमपूर्ण रहने लगते हैं, मैत्रीपूर्ण रहने लगते हैं। अगर देखा जाए तो हमारे जीवन की पीड़ा, हमारे जीवन की समस्याओं का कारण यही है कि हमारे अंदर का मैत्रीभाव कमजोर है। मैत्री करने में हमें संकोच है, मैत्री करने में हमें थोड़ी-सी कहीं दुविधा है, असमंजस है और शत्रुता हम बड़ी आसानी से कर लेते हैं। बड़े इत्मीनान से, बड़ी सहजता से हम शत्रु बना लेते हैं, लेकिन उतनी ही सहजता से हम अपने मित्र नहीं बना पाते।

पुराणकथाओं में, संस्कृत के काव्यों में, नाटकों में जितनी पुरातन कथाएँ हैं, उन सबमें जब ऋषियों का, उनके आश्रमों का वर्णन होता है तो उस वर्णन में सबसे अधिक वर्णन होता है मैत्रीभाव का। कैसे? जीव-जंतु परस्पर ऋषियों के आश्रम में मैत्रीभाव से रहते थे। 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' कालिदास का कालजयी काव्य है। इस काव्य में शकुंतला का वर्णन हुआ है और शकुंतला के वर्णन के साथ महर्षि कण्व के आश्रम का भी वर्णन हुआ है।

महर्षि कण्व का आश्रम कैसा था? उसके बारे में कालिदास कहते हैं कि ऋषि कण्व के आश्रम में जो वैर करने वाले जीव-जंतु थे, वो भी प्रेम से, मैत्रीभाव से रहते थे। वहाँ मैत्री-ही-मैत्री थी। एकदूसरे से सभी मित्रतापूर्ण ढंग से रहते थे। आपस में प्रेम का, शांति का, अहिंसा का और मैत्री का वातावरण था। सर्प और नेवला, मयूर और सर्प, ऐसे जीव-जंतु जिनमें द्वेष, वैर स्वाभाविक है, वो भी आश्रम में महर्षि की साधना के प्रभाव से प्रेम से रहते थे और जिनके अंदर थोड़ा-सा भी भाव सघन था, उनका प्रेम छलकता था, उमगता था।

अभिज्ञानशाकुंतलम् में, महाकवि कालिदास कहते हैं कि जब शकुंतला विदा होने लगीं, ऋषि कण्व के आश्रम से अपने ससुराल को जाने लगीं, तो किस तरह से वृक्ष, लताएँ उनको आलिंगन करने लगे। हिरन, खरगोश, वहाँ के पशु-पक्षी किस तरह उनको प्यार देने आने लगे। इस तरह मैत्री का एक बड़ा प्रगाढ़ वातावरण ऋषि कण्व के आश्रम में था—ऐसा महाकवि कालिदास कहते हैं अभिज्ञानशाकुंतलम् में।

मैत्री का भाव हमें सहज ही निश्चिंत बनाता है। मैत्री का भाव हमें सहज ही चिंतामुक्त करता है, भयमुक्त करता है, यहाँ तक कि भयप्रदाता वातावरण को भी प्रेम प्रदान करने वाला बना देता है। हम कल्पना करें कि जब पुरातनकाल में, ऋषि-महर्षि तपश्चर्या करते होंगे, घोर अरण्य में, भीषण वन में तपश्चर्या करते होंगे तो क्या वहाँ भीषण हिंस्र जीव-जंतु नहीं रहते होंगे? रहते होंगे। जब साधना करते होंगे, तप

करते होंगे तो क्या वन में रहने वाले दस्यु और हिंसक मनुष्य वहाँ नहीं रहते होंगे ? रहते होंगे। लेकिन वो भी उनके साथ प्रेमपूर्ण होकर रहते होंगे।

प्रेम और मित्रता एक तरह से ईश्वरीय भाव हैं। ये मनुष्य को देवत्व से ओत-प्रोत कर देते हैं, ईश्वरत्व से ओत-प्रोत कर देते हैं। जब दिल बड़ा होता है, मन बड़ा होता है तो उसमें मित्रता प्रस्फुटित होती है, मित्रता अंकुरित होती है। मन जितना स्वार्थ से, जितना अहंकार से घिरा रहता है, उतना उसमें सबके प्रति शंका, संशय बने रहते हैं, सद्भाव नहीं होते।

वृक्ष से मैत्री एक प्रतीक है कि हम प्रकृति के साथ, अस्तित्व के साथ—संपूर्णता के साथ, सहजीविता के साथ जीना चाहते हैं और इसके साथ ही भाव हमारा व्यापक होता जाता है। वैसे भी हम देखें तो वृक्ष में अनेकों ऐसे गुण होते हैं, जो एक ध्यान करने वाले व्यक्ति में होने चाहिए। जैसे—**वृक्षों का पहला गुण है—स्थिरता।** वृक्ष स्थिर रहते हैं, इधर-उधर नहीं डोलते। अगर हम कहें कि सबसे ज्यादा आसन किसको सिद्ध हुआ है, आसनसिद्ध कौन है ? तो वृक्ष, वो एकदम स्थिर खड़े रहते हैं। **वृक्षों का दूसरा गुण है—शांति,** जो एक ध्यानसाधक में होना चाहिए। वृक्ष कभी अशांत और उत्तेजित नहीं होते, शांत रहते हैं। **वृक्षों का तीसरा गुण है—ऊर्ध्वगामिता।** वृक्षों की चेतना हमेशा ऊर्ध्वगामी रहती है, वृक्ष हमेशा ऊपर की ओर बढ़ते हैं। इसी तरह से ध्यानसाधक की भी चेतना ऊर्ध्वगामी रहनी चाहिए, जिसकी चेतना व चेतनता निम्नगामी और अधोगामी हो, वो व्यक्ति ध्यान नहीं कर सकता।

वृक्षों का चौथा गुण है—प्रकाश को धारण करने की क्षमता। वृक्ष के बारे में कहें कि वो क्या खाते हैं, उनका भोजन क्या है, वो जीवन कैसे प्राप्त करते हैं तो प्रकाश के माध्यम से। वृक्ष प्रकाश को धारण करते हैं, प्रकाश को ग्रहण करते हैं, प्रकाश ही उनके पोषण का कारण बनता है। कैसे ? यह बात तो आज का विज्ञान भी मानने लगा है कि प्रकाश की सहायता से वृक्ष क्लोरोफिल बनाते हैं और क्लोरोफिल उन्हें पोषण देता है। जितना पोषण वृक्ष अपनी जड़ों से प्राप्त करते हैं, उतना ही पोषण उन्हें प्रकाश से भी प्राप्त होता है। प्रकाश को धारण करने की क्षमता, प्रकाश को ग्रहण करने की क्षमता वृक्षों में सबसे अधिक है। इसी तरह साधक वही है, जो किसी भी वातावरण से, कहीं से भी प्रकाश को ग्रहण कर सके, प्रकाश को धारण कर सके।

इसके बाद वृक्षों का जो अगला गुण है, वह है कि **वृक्ष अपनी प्रसन्नता झूम करके, एक अद्भुत नृत्य करके अभिव्यक्त करते हैं।** झूमती हुई प्रसन्नता वृक्षों का अगला गुण है, जो ध्यान के साधक में होना चाहिए। ध्यान के साधक में जब अहोभाव होता है, जब महाभाव प्रकट होता है, जब चेतना परिष्कृत होती है, शुद्ध होती है तब उसकी प्रसन्नता का प्रकटीकरण होता है, जो वृक्ष में सहज स्वाभाविक है।

वृक्षों का छठा गुण है—शीतल छाया, पूर्ण उदारतापूर्वक। ऐसा नहीं है कि वृक्ष अपनी शीतल छाया प्रदान करने में भेदभाव करते हैं, बल्कि सभी को समान भाव से वे शीतल छाया देते हैं। उसको भी वो अपनी शीतल छाया प्रदान करते हैं, जो उन्हें काटने का प्रयास करता है, जो उन्हें नुकसान पहुँचाने का प्रयास करता है। इसके साथ **वृक्षों का अगला गुण है—आश्रय प्रदान करना।** वृक्ष सहज रूप से सभी को आश्रय देते हैं। वृक्षों की छाँह में कोई भी विश्राम कर सकता है, उनकी डालियों पर भी अनेक पक्षी विश्राम पाते हैं। उनकी छाँह के नीचे पशु विश्राम करते हैं, मनुष्य विश्राम करते हैं। इस तरह वृक्षों की डालियाँ और डालियों की छाया, अपने आप में आश्रयप्रदाता हैं।

वृक्षों में ये कुछ ऐसे गुण हैं, जो ध्यानसाधक में, जो तपस्या करने वाले व्यक्ति में होने ही चाहिए। जो शांति से वंचित है, वो साधना नहीं कर सकता। एक अशांत व्यक्ति, एक उत्तेजित व्यक्ति ध्यान नहीं कर सकता। जो स्थिर नहीं है, जो अस्थिर है, वो साधना नहीं कर सकता है। कैसे साधना करेगा ? जिसका स्वयं में आसन ही सिद्ध नहीं हुआ, वो साधना कैसे करेगा ? एक स्थिर व्यक्ति ही साधना कर सकता है और जिसकी चेतना ऊर्ध्वगामी नहीं है, वो ध्यान में बैठ ही नहीं सकता है।

अधोगामी, निम्नगामी चेतना का व्यक्ति ध्यान नहीं कर सकता है, उससे ध्यान नहीं हो सकता है और जो **तमसो मा ज्योतिर्गमय,** तमस् से प्रकाश की ओर नहीं जाता, जो प्रकाश को धारण नहीं कर सकता, प्रकाश को ग्रहण नहीं कर सकता, वो ध्यान भी नहीं कर सकता। और ध्यान पकता है, ध्यान फलता है, ध्यान सिद्ध होता है, ध्यान रमता है, ध्यान प्रगाढ़ होता है तो झूमती हुई प्रसन्नता के रूप

में ही अभिव्यक्त होता है ध्यान। इसी तरह वृक्ष भी झूमते हैं प्रसन्नता में।

प्रसन्नता में झूमते हुए वृक्ष अपनी प्रकृति के अनुसार कुछ-न-कुछ लुटाते हैं। जो फलदार हैं, वो फल लुटाते हैं; जो पुष्प वाले वृक्ष हैं, वो पुष्प लुटाते हैं और जो पुष्प और फल नहीं लुटा सकते, वो छाँह तो लुटाते-ही-लुटाते हैं। आनंद लुटाते हैं वृक्ष। अपना सब कुछ निछावर कर देते हैं उस प्रसन्नता के क्षणों में वृक्ष।

वृक्षों से मैत्री बड़ी अद्‌भुत है; क्योंकि वृक्ष सभी से मैत्री करते हैं। यह शत्रुता का भाव प्राणियों में है, वृक्षों में नहीं। जीव-जंतु एकदूसरे से वैर करते हैं, मनुष्य एकदूसरे से वैर करते हैं। सिंह, चीता और भी प्राणी एकदूसरे से वैर करते हैं, लेकिन वृक्ष तो मैत्री ही करना जानते हैं। उनकी शीतल छाया सबके लिए है और बिना किसी भेदभाव के सबको अपना आश्रय देते हैं, इस तरह आश्रयप्रदाता के रूप में हैं—वृक्ष।

अगर हम कहें तो सबसे महान साधक कौन? तो वृक्ष। एक साधक अगर किसी से कुछ सीख सकता है, जान सकता है, ग्रहण कर सकता है कि साधना कैसे की जाती है? साधना की प्रक्रिया क्या होती है? साधना के गुण क्या होते हैं और साधक की संपत्ति क्या होती है? तो सबसे ज्यादा वह वृक्षों की छाँह में बैठकर इसे अनुभव कर सकता है, वृक्षों के सान्निध्य में ही इसे जान सकता है।

वृक्षों से मैत्री, वृक्षों से तादात्म्य, वृक्षों के साथ जुड़ाव मनुष्य को सचमुच में साधक बना देता है। इसीलिए वृक्षों से मैत्री बड़ा पवित्र और ऐसा अहोभाव है, जो मनुष्य के ध्यान को प्रगाढ़ बनाता है।

वृक्षों के साथ प्रकृति ने एक तरह से हमारी सहजीविता रखी है। वो विषैली हवा, जो हम फेंक देते हैं, वृक्ष उसे फिर से जीवनदायी हवा में परिवर्तित कर देते हैं। मनुष्य कार्बन-डाइऑक्साइड फेंकता है और वृक्ष उस कार्बन-डाइऑक्साइड को अवशोषित करके बदले में ऑक्सीजन देते हैं। वृक्षों के रूप में प्रकृति हमें बहुत कुछ प्रदान करती है, जैसे—भोजन, वस्त्र, लकड़ी, ईंधन आदि।

आज वृक्षों से मित्रता खो देने के कारण ही जीवन पर संकट आया। वृक्षों से मैत्री साधक का गुण तो है ही, जीवन का भी गुण है। पुरातनकाल में, ऋषिकाल में, वेदकाल में वृक्षों में हम देवी-देवताओं का वास मानते थे, प्रकृति की सूक्ष्मशक्तियों का वास मानते थे। अभी भी हम कहते हैं कि नवग्रह के प्रतीक वृक्ष होते हैं, वनस्पतियाँ होती हैं। जैसे—अर्क वृक्ष सूर्य का प्रतीक है, उसमें सूर्य की चेतना का वास है। शमी वृक्ष में शनि की चेतना का वास है।

ऐसे ही वृक्षों के साथ, वनस्पतियों के साथ नवग्रह की चेतना जुड़ी रहती है। पीपल के वृक्ष में भगवान विष्णु का वास है तो बरगद के वृक्ष में भगवान शिव का वास है, यह वृक्ष शिवत्व को प्रदर्शित करता है। इस तरह बड़ी स्वाभाविक, बड़ी सघन मित्रता है हमारी वृक्षों के साथ।

जब हम आध्यात्मिक कथाएँ व पुराणकथाएँ आदि पढ़ते हैं तो हम अधिकांशत: यह पाते हैं कि अधिकांश साधकों की साधना वृक्षों के सान्निध्य में संपन्न हुई है। ऐसा कहते हैं कि पीपल वृक्ष की छाँह के नीचे, पीपल के नीचे ध्यान सबसे ज्यादा प्रगाढ़ होता है। कई साधकों का तो अनुभव है कि पीपल किसी भी रूप में आस-पास हो तो साधना जल्दी सिद्ध होती है। विजयकृष्ण गोस्वामी अपने शिष्यों को सिखाते थे कि पीपल नहीं तो कोई बात नहीं, अगर हम पीपल का एक पत्ता भी अपने हाथ में ले करके, गोद में ले करके ध्यान करें तो ध्यान जल्दी लगने लगता है।

भगवान बुद्ध की साधना भी पीपल के वृक्ष के नीचे, पीपल की छाँह के नीचे संपन्न हुई थी। निरंजना नदी के पास पीपल की छाँह में, पीपल के नीचे बैठ करके उन्होंने बोधिज्ञान प्राप्त किया था। इस तरह कुछ ऐसी चेतना वृक्षों में है, जो हमारी साधना में सहयोगी है। जो साधना को गति प्रदान करती है, सुपथ प्रदान करती है, मार्ग प्रदान करती है।

साधुओं ने, संतों ने, भक्तों ने, ध्यानियों ने, ध्यानसिद्धों ने अपनी साधना वन में की, उनकी साधना की सुगंध वन में फैली। वृक्षों से जो मैत्री का भाव है, वो वृक्ष के साथ जीवन को एकाकार करता है, वो जड़-चेतन का भेद मिटा देता है। जो जड़ है, वही चेतन है। जो चेतन है, वही जड़ है। जब उपनिषद् कहते हैं—**सर्वं खल्विदं ब्रह्म।** सब कुछ परमात्मा ही है। यानी जो वृक्षों में है, वही मनुष्य में भी है।

वृक्षों से मैत्री ध्यान का एक उन्नत प्रतीक है। ध्यान की एक उन्नत भावना है। यह जड़-चेतन को एकाकार करने की भावना है। प्रकृति से तादात्म्य करने की भावना है और यह मैत्रीभाव वृक्षों से सद्‌गुण अपनाने की भावना है। ❑

भारतीय संस्कृति को सामयिक संदर्भ में प्रस्तुत करती ये प्रतिभाएँ

भारतीय युवाओं ने वह कार्य कर दिखाया है, जो अभी तक किसी ने नहीं किया था। लोगों की मान्यता अब तक यही हुआ करती थी कि अँगरेजी में लिखने वाले भारतीय लेखक पाश्चात्य संस्कृति को बढ़ावा देते हैं, लेकिन हाल के कुछ वर्षों में परिदृश्य पूरी तरह से बदल गया है। भारत के अँगरेजी लेखकों की लिखी पुस्तकें दुनियाभर में भारतीय संस्कृति, धर्म और इतिहास की विजय-पताका फहरा रही हैं।

भारत के पौराणिक और धार्मिक चरित्रों की जानकारी अब पूरी दुनिया के लोगों को अँगरेजी में लिखने वाले भारतीय लेखकों द्वारा दी जा रही है। पौराणिक और धार्मिक कथाओं को नए संदर्भों में प्रस्तुत किए जाने की यह विशिष्ट शैली दुनियाभर में इतनी पसंद की जा रही है कि ये भारतीय लेखक आज दुनिया के बेस्ट सेलर बने हुए हैं।

इन अँगरेजी उपन्यासों के कारण भारत का गौरवमयी अतीत अब पूरी दुनिया की जानकारी में भी आ रहा है। हालाँकि कुछ दशकों पहले स्थिति ठीक विपरीत थी। अँगरेजी में लिखने वाले भारतीय लेखक, भारत की वह छवि दुनिया के सामने रखते थे, जो अत्यंत बुरी थी। अशिक्षा, गरीबी, अंधविश्वास जैसी तमाम बुराइयों को परोसा जाता था और इसके सहारे ये लेखक स्वयं को अंतरराष्ट्रीय स्तर के साहित्यकारों के रूप में स्थापित करने का प्रयास करते थे, लेकिन पिछले एक दशक में परिदृश्य पूरी तरह से बदल गया।

अँगरेजी में लिखने वाले युवा लेखकों की एक पूरी जमात सामने आई, जिसने विश्व समुदाय के सामने प्राचीन भारत के गौरवमयी अतीत को सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया। इन नए लेखकों में अधिकांश आईआईएम व आईआईटी जैसे संस्थानों से निकले हुए युवा हैं, जिन्होंने हासिल की हुई उच्च शिक्षा का उपयोग अँगरेजी साहित्य लेखन में किया और अपनी प्रखर बौद्धिकता के द्वारा पौराणिक संदर्भों को आधुनिक युग से जोड़ने व इस दिशा में नया शोध करने में लगाया।

देश में अब पौराणिक और धार्मिक चरित्रों को केंद्रीय पात्र बनाकर लिखने वालों की बड़ी संख्या है। इनमें अमिश त्रिपाठी, अ.नि. सांघी, अशोक के बैंकर, देवदत्त पटनायक, आनंद नीलकांतन जैसे लेखक अग्रणी भूमिका में हैं। साहित्य के इस नए युग की शुरुआत पिछले करीब एक दशक में हुई। एमबीए करने के बाद पारिवारिक व्यवसाय कर रहे अ.नि. सांघी ने वर्ष 2006 में अपना पहला उपन्यास 'दि रोजाबेल लाइन' लिखा। जीसस क्राइस्ट (ईसामसीह) की मृत्यु सूली पर नहीं होने और उनके द्वारा अपना अंतिम समय भारत के कश्मीर में गुजारे जाने के दावे को आधार बनाकर लिखे गए इस काल्पनिक, ऐतिहासिक और रहस्यमय कथानक वाले उपन्यास ने विश्वभर के पाठकों को झकझोर कर रख दिया।

उनके इस उपन्यास को दुनियाभर में भरपूर सफलता मिली और वे विश्व के बेस्ट सेलर लेखकों में शामिल हो गए। इसके बाद उन्होंने भगवान कृष्ण के चरित्र को आधार बनाकर 'कृष्णस' और महान कूटनीतिज्ञ चाणक्य को आधार बनाकर 'चाणक्य चांट' जैसे उपन्यास लिखे। ये सभी उपन्यास दुनियाभर में विख्यात रहे। मूलत: अँगरेजी में लिखे गए इन उपन्यासों का अब हिंदी समेत दुनिया की कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

भारतीय पौराणिक और धार्मिक चरित्रों को आधुनिक समाज के सामने नए ढंग से लाने के अभियान को नई ऊँचाइयाँ अमिश त्रिपाठी ने दीं। आईआईएम कोलकाता के स्नातक अमिश त्रिपाठी ने चौदह वर्षों तक बैंकिंग और फाइनेन्शियल क्षेत्र में काम किया और फिर वे अचानक लेखन की ओर मुड़ गए। उन्होंने भगवान शिव को केंद्र में रखकर 'शिव ट्रिलजी' लिखना प्रारंभ किया। अमिश ने भगवान शिव के सामान्य मानव से महादेव बनने की काल्पनिक कथा को अत्यंत रोचक ढंग से तीन खंडों में प्रस्तुत किया।

शिव ट्रिलजी का प्रथम खंड 'इम्मोर्टल्स ऑफ मेलूहा' 2010 में प्रकाशित हुआ। अमिश ने अपनी प्रबंधन और मार्केटिंग क्षमताओं का शानदार उपयोग करते हुए इस उपन्यास

को विश्व बाजार में प्रस्तुत किया। अद्‌भुत कथानक और रोचक प्रस्तुति के कारण उनके पहले ही उपन्यास को जबरदस्त प्रसिद्धि मिली। यह उपन्यास दुनिया के किसी भी एयरपोर्ट के बुक स्टोर्स पर सबसे अधिक बिकने वाली पुस्तक बन गया।

अँगरेजी पढ़ने वाले लोगों के लिए रोचक शैली में लिखा गया प्राचीन भारत का यह इतिहास पढ़ना एक नया अनुभव था। इससे पहले वे भारत को साँप-सपेरों और जादू-टोने वाले पिछड़े हुए देश के रूप में जानते थे। अमिश ने मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और लोथन में मिले प्राचीन भारतीय सभ्यता के अवशेषों को आधार बनाकर प्राचीन भारत का इतना आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया कि पूरा विश्व समुदाय चमत्कृत रह गया। उनकी पहली पुस्तक 'इम्मोर्टल्स ऑफ मेलूहा' के बाद शिवत्रयी के दो और खंड 'सीक्रेट्स ऑफ नागाज' और 'ओथ ऑफ वायुपुत्र' अगले तीन वर्षों में प्रकाशित हुए। इन पुस्तकों ने बिक्री के सारे रिकॉर्ड ध्वस्त कर दिए। शिव ट्रिलजी सीरीज साढ़े तीन लाख प्रतियों के साथ भारतीय इतिहास की सबसे तेज बिक्री वाली सीरीज बन गई। इन पुस्तकों की अब तक 100 करोड़ रुपये की बिक्री हो चुकी है। फोर्ब्स इंडिया ने अमिश को सन् 2012, 2013 और 2014 में लगातार तीन वर्षों तक सौ विख्यात लोगों में शामिल किया। शिव ट्रिलजी की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि चौदह भाषाओं में इसका अनुवाद उपलब्ध है। शिव ट्रिलजी के बाद अमिश ने मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम के जीवन पर आधारित सीरीज 'शियॉन ऑफ इक्ष्वाकु' लिखना प्रारंभ किया है। इस सीरीज की पहली पुस्तक सन् 2015 में प्रकाशित हुई। पाठकों ने इसे भी हाथोहाथ लिया। दुनियाभर में उपन्यासों के शौकीन पाठकों ने इसे खरीदा। इस सीरीज के अगले खंड की प्रतीक्षा बड़ी बेसब्री से की जा रही है।

इस प्रकार युवा प्रतिभाओं को भारतीय संस्कृति के अनगिनत आयामों से किसी को भी वर्तमान संदर्भ में प्रस्तुत करना चाहिए; क्योंकि हमारी आध्यात्मिक संस्कृति कालजयी है और इसके सूत्र और संदर्भ उतने ही सामयिक हैं, बस, उन्हें सामयिक रूप से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। ❑

महाभारत समाप्त हुआ। पुत्रों के वियोग से दुःखी धृतराष्ट्र ने महात्मा विदुर को बुलाया। उनके साथ सत्संग में दुःख हलका करने लगे। चर्चा के बीच धृतराष्ट्र ने पूछा—''विदुर जी! हमारे पक्ष का एक-एक योद्धा इतना सक्षम था कि उसने सेनापति बनने पर अपने पराक्रम से पांडवों के छक्के छुड़ा दिए। यह जीवन-मरण का युद्ध है, यह सबको विदित था। यह ध्यान में रखते और सेनापति बनने पर ही अपना पराक्रम प्रकट करने की जगह कर्त्तव्य-बुद्धि से एक साथ पराक्रम दिखाते तो क्या युद्ध जीत न जाते?''

विदुर जी बोले—''राजन्! आप ठीक सोचते हैं। यदि वे ऐसा कर सकते तो जीत सकते थे, परंतु अकेले अधिक यश बटोरने की लिप्सा तथा अपने को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की अहंता ने कर्त्तव्य को सोचने, उसे निभाने की उमंग पैदा करने का अवसर ही नहीं दिया। यदि कर्त्तव्य ही सोचा होता तो वे अपने भाइयों को उनका हक देकर युद्ध टाल भी सकते थे। जो जैसा करता है, वैसा पाता है। अतः हे राजन्! आप कौरवों की हार व उनकी मृत्यु का दुःख न करें।''

साधना में धैर्य है जरूरी

बोधप्राप्ति के बाद गौतम बुद्ध ने सारनाथ में अपना पहला उपदेश दिया। वे लोक-कल्याण हेतु विभिन्न स्थानों का परिभ्रमण करने लगे। उनके उपदेशों से लोगों का जीवन कृतार्थ होने लगा। उनके यश-गौरव को सुनकर उनके शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। उनके शिष्यों में एक नवयुवक ने उनसे दीक्षा ली। उसने गुरु महिमा एवं साधना से होने वाले चमत्कारों के बारे में सुन रखा था और आत्मबोध प्राप्त करने की इच्छा से ही उसने गौतम बुद्ध से दीक्षा ली थी। दीक्षा लेने के कुछ दिनों बाद तक जब उसे आत्मबोध नहीं हुआ तब वह निराश होने लगा, उदास रहने लगा। बार-बार बुद्ध के उपदेश सुनने के बाद भी आखिर मुझे आत्मबोध क्यों नहीं हो रहा? ऐसे कई प्रश्न उसके मन में आने लगे। अब तो बार-बार बुद्ध के उपदेश सुनकर भी उसका मन उन उपदेशों से ऊबने लगा।

आखिर एक दिन ऐसा आया जब वह बुद्ध के उपदेशों के प्रति भी उदासीन रहने लगा। वह सोचने लगा कि आखिर ये मूर्ख लोग बुद्ध के उन्हीं उपदेशों को बार-बार क्यों सुनते हैं? क्योंकि मैंने भी तो उनके उन्हीं उपदेशों को कई बार सुना, पर उनसे अब तक मुझे कोई बोध नहीं हो सका। मुझे कोई अलौकिक ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। एक दिन उसका सब्र टूट गया और वह तथागत के पास जाकर बोला—"भगवन्! आप मुझे परम ज्ञान दे सकते हैं तो दीजिए, अन्यथा मैं यह सब साधना-भजन छोड़ रहा हूँ।" तथागत ने कहा—"वत्स! जरूर छोड़ देना। लेकिन जाते-जाते एक कहानी सुनते जाओ।" तथागत ने कहानी प्रारंभ की जो कि इस प्रकार है।

"एक बार की बात है, किसी नगर में दो धनी सेठ रहते थे। दोनों के पास अपार धन-वैभव था। दूर-दूर तक उन दोनों के धन-वैभव की चर्चा होती थी। अपने अपार धन-वैभव को लेकर उन दोनों सेठों के बीच आपस में एकदूसरे से आगे निकल जाने की होड़ लगी रहती थी। धन-वैभव में दोनों एकदूसरे से आगे निकल जाने को आतुर थे। वे दोनों अक्सर बाजार में ही मिलते थे।

"एक दिन पहला सेठ पहली बार दूसरे सेठ के घर गया और उसने देखा कि दूसरा सेठ एक बड़े ही आलीशान और सुंदर भवन में रहता है; जबकि पहले सेठ का मकान इससे कम सुंदर और मात्र दो मंजिला ही था। पर उस सेठ का मकान तो बहुमंजिला था, जो किसी को भी दूर से ही दिखाई देता था।

"यह आलीशान और बहुमंजिला भवन देखकर पहले सेठ को बड़ा अचंभा हुआ और दु:ख भी। वह खुद को दूसरे सेठ से छोटा महसूस करने लगा। उसके अहंकार को बड़ी ठेस लगी। दूसरे सेठ से बड़ा होने, कहलाने के उसके विचार ने तीव्र इच्छा का रूप लिया और उस इच्छा को आकांक्षा बनते देर न लगी। पहले सेठ ने तुरंत उससे भी सुंदर और बड़ा मकान बनाने का निश्चय किया।

"यह निश्चय करके वह उस सेठ से मिलने और उसका आतिथ्य ग्रहण करने के बाद अपने घर चल दिया। रास्तेभर उसके दिमाग में दूसरे सेठ का बहुमंजिला मकान घूम रहा था। जैसे ही वह घर पहुँचा, उसने तुरंत अपने सेवक को नगर के सर्वश्रेष्ठ वास्तुकार को बुलाने के लिए भेजा। वास्तुकार (कारीगर) आया तो सेठ ने उससे कहा—'मुझे पड़ोसी नगर के सेठ के जैसा ही सुंदर, आलीशान और बहुमंजिला मकान चाहिए। जितनी जल्दी हो सके, उसे बनाकर तैयार करो।' सेठ के आदेश से उसी दिन से उस कारीगर ने मकान बनाने का काम शुरू कर दिया।

"कारीगर, मजदूर सब इकट्ठे हुए और शीघ्रता से काम होने लगा। उसने सबसे पहले नींव खोदनी शुरू की। पूरा दिन नींव के गड्ढे खोदने में ही चला गया; क्योंकि मकान बहुमंजिला बनाना था इसलिए गड्ढे भी गहरे ही खोदने थे। जब शाम को सेठ काम का मुआयना करने आया तो उसने देखा कि कारीगर ने बहुत गहरे गड्ढे खुदवाए हैं, पर उसे लगा कि इस प्रकार तो बहुत दिन लग जाएँगे। इसलिए सेठ ने तुरंत कारीगर को बुलाया और पूछा—'इतने गहरे गड्ढे किसलिए हैं?'

''कारीगर बोला—'सेठ जी! बहुमंजिला मकान बनाना है, तो नींव भी बहुत मजबूत और गहरी होनी चाहिए। मकान के ऊपर अभी कई मंजिलें और बनेंगी। इसलिए ऊपर की सभी मंजिलें भी तो मजबूत होनी चाहिए। पर इसमें समय तो लगेगा; क्योंकि मैं अच्छा काम करना चाहता हूँ, ताकि आपको कोई शिकायत का मौका न मिले।' सेठ ने कहा—'मुझे सीधे बहुमंजिला मकान चाहिए। नींव और पहले, दूसरे या उसके ऊपर बनने वाली मंजिलों की तुम चिंता न करो।' कारीगर ने कहा—'यह संभव नहीं है सेठ जी!' पर सेठ जी को तो शीघ्रता में ही बहुमंजिला मकान चाहिए था, सो सेठ ने नाराज होकर कहा—'ठीक है, तुम जाओ, मैं कोई दूसरा कारीगर देख लूँगा, जो शीघ्रता से सब कुछ कर सके।' इतना सुनते ही वह कारीगर काम छोड़कर चला गया।''

अब महात्मा बुद्ध ने उस शिष्य से पूछा—''वत्स! अब तुम क्या सोचते हो? क्या तुम्हें लगता है कि उस सेठ का बहुमंजिला मकान किसी कारीगर ने बनाया होगा?'' तब उस शिष्य ने कहा—''भगवन्! वह सेठ निश्चित ही मूर्ख था, जिसे इतना भी नहीं पता था कि बिना गहरी और मजबूत नींव के भी कोई मकान और उससे भी बहुमंजिला मकान बनाया जा सकता है। भला, यह कैसे संभव है?'' शिष्य की प्रतिक्रिया सुनकर तथागत बोले—''हाँ वत्स! वो सेठ तो मूर्ख था ही, लेकिन मुझे एक वैसा ही सेठ मेरे सामने बैठा दिखाई दे रहा है, जो मुझसे गुण-कर्म-स्वभाव की मजबूत नींव बनाए बिना ही परम ज्ञान की तीसरी मंजिल बनाने का आग्रह कर रहा है।'' इतना सुनते ही उस शिष्य को अपनी भूल का भान हुआ और वह महात्मा बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा।

हममें से ऐसे बहुत से लोग हैं, जो अक्सर उस शिष्य की भाँति ही शिकायतें किया करते हैं। हम साधना की गहराई में उतरने के बजाय साधना से होने वाले चमत्कारों से ज्यादा प्रभावित होते हैं। साधना न तो चमत्कार है न ही कोई जादूगरी। साधना एक विज्ञान है; जिसके माध्यम से शिष्य को, साधक को अपने गुण-कर्म-स्वभाव में आमूलचूल परिवर्तन करना होता है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार—'आत्मपरिष्कार की साधना का नाम ही अध्यात्म है। अध्यात्म जीवन का शीर्षासन है। हमारा जीवन जिस ढर्रे पर चल रहा था, उससे विलग होकर अपना आत्मपरिष्कार करते हुए जीवन के शीर्ष अर्थात जीवन के चरम को छूना ही साधना का उद्देश्य है।'

अत: यह स्पष्ट है कि हमारी साधना जितनी गहरी होगी, हमारी साधना की नींव उतनी ही मजबूत होगी। उसी मजबूत नींव पर हम आत्मोत्कर्ष, आत्मबोध, आत्मसाक्षात्कार की पताका फहरा सकते हैं। वहाँ हम अध्यात्म का आलीशान भवन बना सकते हैं। अध्यात्म-साधना में अधीरता की नहीं, गहराई की जरूरत होती है; जिसमें उतरकर आत्मपरिष्कार की प्रक्रिया पूरी कर साधक शनै:-शनै: अपनी मंजिल की ओर अग्रसर होता हुआ, ध्यान की अनंत गहराई में डूबकर, उतरकर समाधि की स्थिति को प्राप्त करता है। आत्मबोध, आत्मज्ञान को प्राप्त करता है। अत: साधना में अधीरता एवं शीघ्रता नहीं, बल्कि धैर्य की आवश्यकता है, जैसा कि प्रस्तुत दोहे में संत कबीर ने कहा है—

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय॥
कबीर धीरज धरे, हाथी मन भर खाय।
टूक एक के कारने, स्वान घरै घर जाय॥
मैं मेरी जब जायगी, तब आवैगी और।
जब यह निश्चल होयगा, तब पावैगा ठौर॥
बहुत गई थोरी रही, व्याकुल मन मत होय।
धीरज सबको मित्र है, करी कमाय न खोय॥

अर्थात—हे मन! धैर्य धारण कर, धीरे-धीरे सब कुछ (जो होने योग्य हो) हो जाता है। माली सैकड़ों घड़े जल सींचता है, परंतु समय आने पर ही फल होता है, तुरंत नहीं। धैर्य धारण करने से अपने स्थान पर ही हाथी मनभर का आधार पाता है, परंतु एक टुकड़े के लिए कुत्ता घर-घर दौड़ता है। शरीर व संसार की जब अहंता-ममता नष्ट होगी, तभी स्वरूपबोध, आत्मबोध प्राप्त होगा। जब यह मन अपने आप ही में निश्चल हो जाएगा, तभी हमें स्थिति की प्राप्ति होगी। बहुत बीत गया, थोड़ा और बाकी है, मन में अधीर मत होओ। धैर्य ही सबका मित्र है, बहुत दिनों में की हुई कमाई (साधना) को व्यर्थ ही नष्ट मत करो।

अत: हम भी साधना में धैर्य रखें; क्योंकि बीज बोते ही रातोरात वृक्ष नहीं उगा करते न ही उसमें पुष्प और फल लगते हैं। हाँ! हम अपनी साधना में धैर्यपूर्वक लगे रहें तो एक दिन हमारी साधना का बीज—एक विशाल फलदायी वृक्ष भी बन सकेगा और उसमें सुगंधित पुष्पों के साथ-साथ मधुर फल भी लग सकेंगे। इसलिए साधना में धैर्य जरूरी है। ❑

महावीर स्वामी का आत्मभाव

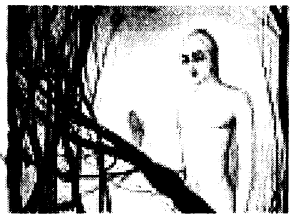

कौन कहाँ से आया है, कहाँ जाएगा, यह कहा नहीं जा सकता, लेकिन आया है तो उसे जाना ही होगा; यह निश्चित है, यह सत्य है। हम आने की बात से हर्षित होते हैं और आने को महोत्सव के रूप में मनाते हैं, प्रेम के साथ अपनाते हैं। जाने की बात हमें रुचिकर नहीं लगती और जाने की बात हमें उदास कर देती है। यही हमारी नासमझी है। इस बात को हमें समझ लेना चाहिए कि आने-जाने का प्रवाह निरंतर है। महावीर भगवान इस प्रवाह के बीच तटस्थ ही नहीं; बल्कि आत्मस्थ, स्वस्थ रहे। इसलिए वे वास्तव में महावीर बने। महावीर बनने के लिए इस प्रवाह की वास्तविकता का बोध होना अनिवार्य है। दिन और रात का क्रम अबाध एवं निर्बाध है। उषा के बाद निशा और निशा के बाद उषा आएगी। जो यह जान लेता है, वह दोनों के बीच सहजता से जीता है।

भगवान महावीर का जीवन ऐसा ही सहजता का जीवन था। वे स्वयं बुद्ध थे, चिंतक थे। वे जीवन के हर पहलू के प्रति सजग रहते थे। जो हो चुका, जो हो रहा है और जो होगा—सभी के प्रति सहज भाव रखना, यही किसी घटनाक्रम का सही आकलन है। जो स्वागत के साथ विदाई की बात जानता है—वह न स्वागतगान से हर्षित एवं प्रसन्न होता है और न ही मृत्युगीत से उदास एवं परेशान होता है। जीवन क्या है ? जीवन तो ऐसा है कि जैसे किसी के हाथ में कुछ देर काँच का सामान रहा, फिर क्षणभर में गिरकर टूट गया। जन्म हुआ और मरण का समय आ गया। साठ-सत्तर बरस पलभर में बीत जाते हैं। जो यह जानता है, वह समय का सदुपयोग कर लेता है। यही बुद्धिमानी है। यही सन्मति है।

जिसकी जब बारी आ जाए उसे जाना होगा, इस बात का बोध होने पर ही जीवन में समीचीनता आती है। तब हम सन्मार्ग की ओर बढ़ते हैं। भगवान महावीर ने स्वयं सन्मार्ग पाया, वे स्वयं सन्मति थे और हमें भी यही सन्मार्ग दिखाया, सन्मति दी। जाने वाला चला जाता है। कौन कहाँ तक साथ निभाएगा, कौन कहाँ तक साथ देगा, यह कहा नहीं जा सकता, पर इतना अवश्य है कि सिवाय कर्म के कोई और अंत तक साथ नहीं देता है। कोई भी द्रव्य पदार्थ या कोई भी घड़ी यहाँ टिक नहीं सकती है।

कोई भी वस्तु यदि रुक जाए, परिवर्तित न हो तो वह वस्तु नहीं मानी जाएगी। वस्तु तो वही है, जो प्रतिक्षण उत्पन्न और नष्ट होते हुए भी अपने स्वरूप में स्थित है। भगवान महावीर की यात्रा भी निर्बाध थी, वह संसार में रुके नहीं, सतत बढ़ते ही गए। जो इस प्रवाहमान जगत में निरंतर अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति की ओर बढ़ रहा है, वही वर्धमान है। उसका प्रतिक्षण नित-नवीन वर्तमान है। भगवान महावीर अपने नाम के अनुरूप ऐसे ही वर्धमान थे। वे अपनी आत्मा में निरंतर प्रगतिशील थे। वर्धमान चरित्र के धनी थे। पीछे मुड़कर देखना या नीचे गिरना उनका स्वभाव नहीं था। वे प्रतिक्षण वर्धमान थे और उनका प्रतिक्षण वर्तमान था। उन्हें अपने मिट जाने का भय नहीं था।

जो शाश्वत है, वह कभी खो नहीं सकता है। भगवान महावीर उसी के खोजी थे। उसी में खोने को राजी थे। उनका उपदेश भी यही था कि जो नश्वर है, मिटने वाला है, उसे पकड़ने का प्रयास या उसे स्थिर बनाने का प्रयास व्यर्थ है। वास्तविक सुख तो अपनी अवनीश्वर आत्मा को प्राप्त करने में है। यहाँ संसार में जो सुख है, उसके पीछे दुःख भी है। संयोग के साथ वियोग लगा हुआ है। जो सुख-दुःख के पार है, जो संयोग-वियोग के पार है, उसका विचार आवश्यक है। उसका जन्म भी नहीं है, उसका मरण भी नहीं है, मानो एक आवरण है, जो इधर-का-उधर हट जाता है और वह जो मृत्युंजय है, वह हमेशा बना ही रहता है।

युद्ध से पूर्व अर्जुन को श्रीकृष्ण ने यही तो समझाया था कि जो कर्मयोगी है, वह जन्म-मरण का विचार नहीं करता, वह तो जन्म-मरण के बीच जो शाश्वत आत्मतत्त्व है, उसका विचार करता है और सदा कर्त्तव्य करने को तत्पर रहता है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

—गीता, 2/27

अर्थात—जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है और जिसकी मृत्यु है, उसका जन्म भी अवश्य होगा। यह अपरिहार्य चक्र है। इसलिए हे अर्जुन! सोच में मत पड़ो। अपने धर्म का, कर्त्तव्य का पालन करना ही इस समय श्रेयस्कर है। जन्म-मरण तो होते ही रहते हैं। हम शरीर की उत्पत्ति के साथ अपना (आत्मा का) मरण मान लेते हैं; क्योंकि अपनी वास्तविक आत्मसत्ता का हमें भान ही नहीं है। जन्मदिन मनाना तभी सार्थक होगा, जब हम अपनी शाश्वत सत्ता को ध्यान में रखकर अपना कर्त्तव्य करेंगे और उसी की सँभाल में अपना जीवन लगाएँगे।

भगवान महावीर स्वामी का कहना था कि यदि वस्तु को हम देखना चाहते हैं या जीवन को परखना चाहते हैं या कोई रहस्य उद्घाटित करना चाहते हैं तो वस्तु के किसी एक पहलू को पकड़कर उसी पर अड़कर नहीं बैठना चाहिए। मात्र जन्म ही सत्य नहीं है और न मरण ही सत्य है। सत्य तो वह भी है, जो जन्म-मरण दोनों से परे है। जो व्यक्ति मरण से डरता है, वह कभी ठीक से जी नहीं सकता। लेकिन जो मरण के प्रति निश्चिंत है, मरण के अनिवार्य सत्य को जानता है, उसके लिए मरण भी प्रकाश बन जाता है। वह साधना के बल पर मृत्यु पर विजय पा लेता है। संसार में हमारे हाथ जो भी आता है, वह एक-न-एक दिन चला जाता है। यदि जीवन के इस पहलू को, इस रहस्य को हम जान लें और आने-जाने वाली दोनों स्थितियों को समान भाव से देखें तो जीवन में साम्यभाव आए बिना नहीं रहेगा, जो मुक्ति के लिए अनिवार्य है।

जीवन के आदि और अंत, दोनों की एक साथ अनुभूति हमारे पथ को प्रकाशित कर सकती है। हम शांत भाव से विचार करें और हर पहलू को समझने का प्रयास करें तो जीवन का हर रहस्य स्वयं ही उद्घाटित होता चला जाता है। अनेकांत से युक्त दृष्टि ही हमें चिंतामुक्त और सहिष्णु बनाने में सक्षम है। संसार में जो विचार-वैषम्य है, वह एकांत पक्ष को पुष्ट करने के आग्रह की वजह से है। अनेकांत का हृदय है समता। सामने वाला जो कहता है, उसे सहर्ष स्वीकार करो। दुनिया में ऐसा कोई भी मत नहीं है, जो भगवान महावीर की दिव्य-देशना से सर्वथा असंबद्ध हो।

यह बात अलग है कि परस्पर सापेक्षता का ज्ञान न होने से दुराग्रह के कारण मतों में, मान्यताओं में मिथ्यापन आ जाता है। हम दूसरे की बात सुनें और उसका आशय समझें। आज बुद्धि का विकास तो हुआ है, लेकिन समता का अभाव है। भगवान महावीर ने हमें अनेकांत दृष्टि देकर वस्तु के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराया है। साथ-ही-साथ हमारे भीतर वैचारिक सहिष्णुता और प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव का बीजारोपण भी किया है।

हमें आज आत्मा के रहस्य को समझने के लिए अनेकांत, अहिंसा और सत्य की दृष्टि की आवश्यकता है। वह भी वास्तविक होनी चाहिए, बनावटी नहीं। यदि एक बार यह ज्योति मिल जाए तो बोध हो जाएगा और निस्सारता का अनुभव होगा। हर्ष-विषाद की कल्पना व्यर्थ है। आत्मा अपने स्वरूप में शाश्वत है। भगवान महावीर अपनी ओर, अपने स्वभाव की ओर देखने वाले थे। वे संसार के बहाव में बहने वाले नहीं थे। हम इस संसार के बहाव में निरंतर बहते चले जा रहे हैं और बहाव के स्वभाव को भी नहीं जान पाते हैं।

क्रांति की गति और समय के विषय में भविष्यवाणी करना असंभव है। यह स्वयं अपने नियमों से शासित होती है, किंतु जब यह फूटती है तो सब बाधाओं को ठुकराती चली जाती है।

जो संसार के इस बहाव के बीच आत्मस्थ होकर रहता है, वही बहाव को जान पाता है। आत्मस्थ होना यानी अपनी ओर देखना। जो आत्मगुण अपने भीतर हैं, उन्हें भीतर उतरकर देखना। अपने आप को देखना, अपने आप को जानना और अपने में लीन होना—यही आत्मोपलब्धि का मार्ग है। मैं कौन हूँ? यह भाव भीतर गहराता जाए। ऐसी ध्वनि-प्रतिध्वनि भीतर-ही-भीतर गहराती जाए, प्रतिध्वनित होती चली जाए कि बाहर के कान कुछ न सुनें। हमारे सामने अपना आत्मस्वरूप मात्र रहे तो उसी में भगवान प्रतिबिंबित हो सकते हैं। उसी में राम अवतरित हो सकते हैं। उसी में महापुरुष जन्म ले सकते हैं। यही तो महावीर भगवान का उपदेश है कि प्रत्येक आत्मा में ईश्वरत्व छिपा हुआ है। बस, उसे ही जाग्रत करना है। ❑

प्रज्ञा

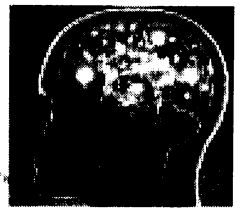

प्रज्ञा बुद्धि नहीं है। प्रज्ञा विचारशीलता नहीं है। प्रज्ञा चित्त का प्रकाश है। हमारे पास बहुत सारी चीजें हैं; जो हमारे अंतर्मन में, अंतर्गर्भ में, अंतर्व्यक्तित्व में छिपी हुई हैं। जैसे—कल्पना, विचार, विवेक व बुद्धि आदि।

बुद्धि होती है जो विश्लेषण करती है, छान-बीन करती है। जो निर्णय करती है, वो बुद्धि होती है; लेकिन जो प्रज्ञा होती है, वो अनुभूति देती है। प्रज्ञा छान-बीन नहीं करती, प्रज्ञा बुद्धि का पर्याय नहीं है। प्रज्ञा बुद्धि का प्रकाश है, चित्त का प्रकाश है और यह प्रकाश परिपूर्ण हो जाए तो? पतंजलि कहते हैं—**ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा**, वहाँ प्रज्ञा ऋतंभरा हो जाती है और एकदम पूरी तरह से प्रकाशित होती है, वहाँ सघन प्रकाश होता है, फिर वहाँ संशय नहीं रहता, संदेह नहीं रहता, भ्रम नहीं रहता।

हम अगर किसी ऐसे कक्ष में, ऐसे कमरे में प्रवेश करें जहाँ पर उजाला कम है, अँधेरा ज्यादा है तो हमें संशय रहेगा कि कौन वस्तु कहाँ रखी हुई है, कौन सामान कहाँ रखा है, कौन टेबल कहाँ रखी है और अगर प्रकाश हो तो फिर हमें ऐसा कोई संशय नहीं होता, भ्रम नहीं होता।

बुद्धि हमें विचार देती है और प्रज्ञा हमें अनुभूति देती है। इसलिए भगवान गीता के एक श्लोक में एक शब्द कहते हैं—**प्रज्ञावादांश्च भाषसे।** यानी बातें तो ऐसे कर रहे हो अर्जुन, जैसे समाधि से उठ करके आए हो। लेकिन तुमको समाधि अभी नहीं हुई है।

जब तक हमारे मन में अँधेरा व्याप्त है, तब तक समाधि कैसे होगी? मन में प्रकाश उँड़ेलने के लिए महाराष्ट्र के संतों ने भागवत धर्म का प्रचार किया, विस्तार किया और संतों ने भी एक स्वर से कहा—सुमिरन, सुमिरन। तुलसीदास जी ने कहा—

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥

मन को धोना है, मन को साफ करना है। मलिनता हटानी है, मैल हटाना है। कैसे भी हटाओ। प्रकाश फूटना चाहिए, अंदर से। कबीरदास जी कहते हैं—

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइए, निकसै जोति अपार॥

कहते हैं गुरु धोबी है और शिष्य कपड़ा। और कपड़े के लिए साबुन चाहिए, ऐसे यों ही कपड़ा पटक-पटककर धोने से मैल थोड़े ही छूटेगा। **साबुन सिरजनहार,** वो परमात्मा, सिरजनहार ही साबुन है। और **सुरति सिला पर धोइए,** बार-बार धोओ, स्मरण करो, ईश्वरस्मरण करो। **निकसै जोति अपार,** तब प्रज्ञा प्रकट होती है। यह जो ज्योति अपार है, यही प्रज्ञा है।

इसलिए तर्क का नाम प्रज्ञा नहीं है, विचार का नाम प्रज्ञा नहीं है, विश्लेषण का नाम भी प्रज्ञा नहीं है—प्रकाश का नाम प्रज्ञा है, अनुभूति का नाम प्रज्ञा है। भगवान कहते हैं कि **प्रज्ञावादांश्च भाषसे**। यदि शब्द तुम बोल रहे हो और तुमको उनकी अनुभूति नहीं है, तो तुम प्रज्ञावानों की तरह तो हो सकते हो, लेकिन प्रज्ञावान नहीं हो सकते हो।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! बोलता तो शकुनि भी अच्छा है, लेकिन प्रज्ञावान नहीं है। बहुत चतुर, चालाक आदमी है। तर्क तो दुर्योधन के पास भी है। हमने दुर्योधन से कहा कि अरे भाई, तुम धर्म की बात क्यों नहीं करते, धर्म का आचरण क्यों नहीं करते तो दुर्योधन कहता है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया हृषिकेश हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

मैं भी जानता हूँ कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है। भई सब लोग तो कहते हैं कि महाराज तुम्हीं तो हृषिकेश हो। हृषिक मतलब इंद्रियाँ, ईश मतलब स्वामी। तुम्हीं तो अंदर बैठे हो हमारे। सब कहते हैं कि भगवान की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। चोरी तो हम तुम्हारे मन से करते हैं। हमने जो द्रौपदी का चीरहरण करने का प्रयास किया, यह किसने किया? तुम्हीं ने तो किया। यह क्या है? तर्क।

यह तर्क है। यह प्रज्ञा नहीं है, बोध नहीं है, समझ नहीं है। दुर्योधन कहता है कि धर्म मैं जानता हूँ, लेकिन प्रवृत्ति नहीं है। ऐसा थोड़े है कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। अरे, मैं उसी जगह में पढ़ा हूँ, जिसमें अर्जुन-युधिष्ठिर पढ़े हैं। उनको पढ़ाने वाले आचार्य द्रोण हमारे भी आचार्य थे। हमारे विद्यालय अलग-अलग नहीं हैं, बल्कि एक ही था। हमारे आचार्य भी अलग-अलग नहीं हैं। जो युधिष्ठिर ने सीखा, वही हमने भी सीखा है।

जानामि धर्मं, इसलिए मैं धर्म जानता हूँ। विचारों में धर्म है, शब्दों में धर्म है। **न च मे प्रवृत्तिः,** लेकिन प्रवृत्ति नहीं है, एटीट्यूड नहीं है। **जानामि अधर्मं,** अधर्म भी जानता हूँ। यह नहीं करना चाहिए। **न च मे निवृत्तिः** लेकिन छुटकारा नहीं मिलता है। तुम्हीं तो हो अंदर में, जो बैठे हो। जैसा तुम कराते हो, वैसा कर देता हूँ। इसमें मेरी क्या गलती है। यह तर्क है, यह प्रज्ञा नहीं है। ये शब्द हैं, इनका कोई अर्थ नहीं है। ये शब्द हैं, इनमें अनुभूति नहीं है। ये विचार हैं, कोरे विचार।

इस तरह भगवान यहाँ पर प्रज्ञावान होने का संदेश दे रहे हैं कि शोक मत करो, अशोक हो जाओ, प्रज्ञावान हो जाओ, भ्रांतिपट को दूर करो, प्राणों का धर्म समझो। प्राण गए या प्राण हैं—यह विचारणीय विषय नहीं है। प्राणों के रहते हुए प्रज्ञावान बनना है, यह विचारणीय विषय है।

हमें प्रज्ञावान होना है, लेकिन प्रज्ञावान होने का अर्थ क्या होता है? प्रज्ञावान होने का अर्थ होता है—तप से आत्मपरिष्कार और फिर योग में प्रतिष्ठा। प्रज्ञावान होने के दो चरण हैं—तप और योग। प्रज्ञावान होने का अर्थ है—तप की प्रक्रिया से, तप के मार्ग से गुजरते हुए, तपते हुए, अपने को तपाते हुए योग में प्रतिष्ठा। प्रज्ञावान होने का अर्थ है—विवेक को आत्मसात् करते हुए वैराग्यवान होने की प्रतिष्ठा, वैराग्यवान होने की अनुभूति।

प्रज्ञावान होने का अर्थ है कि ज्ञान की प्रक्रिया से गुजरते हुए बोध में प्रतिष्ठित होना। प्रज्ञावान व्यक्तित्व है, शब्द नहीं और इन प्राणों के रहते हमको प्रज्ञावान बनना है। इसी में जीवन की अनुभूति है, इसी में सार्थकता है और इसी में सभी तरह के कष्टों से संपूर्ण मुक्ति है। ❑

जो है, उसी में संतोष करना बुद्धिमत्ता है। जो अधिक और अधिक के चक्कर में पड़ते हैं, वे प्राणों से भी हाथ धो बैठते हैं। अंधड़ आया उसके कारण एक विशाल वृक्ष गिरा। पेड़ के नीचे एक ऊँट बैठा था, उसकी कमर टूट गई और टहनियों पर लगे घोंसलों में पक्षी और अंडे-बच्चे कुचलकर चूरा हो गए। ढेरों मांस वहाँ बिखरा पड़ा था।

उस समय एक भूखा सियार उधर से निकला और अनायास ही इतना भोजन पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। सोचने लगा—महीनों तक पेट भरने का मसाला मिल गया। उसने संतोष की साँस ली। निश्चिंत होकर उसने नजर दौड़ाई तो नदी तट पर एक बड़ा-सा मेंढ़क दीखा।

सियार ने सोचा पहले इसे लपक लिया जाए, नहीं तो यह डुबकी लगाकर भाग खड़ा होगा और हाथ से निकल जाएगा। सियार ने मेंढ़क पर झपट्टा मारा। मेंढ़क नदी में खिसक गया। सियार भी इस चिकनी मिट्टी में फिसलता चला गया और गहरे पानी में समा गया। इसे कहते हैं लालच का फल।

इंद्रिय प्रलोभनों से सावधान

मन की फितरत है—सुख की खोज और इंद्रियाँ मन की इस खोज को पूरा करने का, विषय-भोगों में लिप्त होने व इनमें रमने का प्रमुख माध्यम हैं। एक बार मन इनमें रम गया तो फिर यह इनके आगोश में इस कदर आ जाता है कि उपभोग की सीमा भूल जाता है। अत: इंद्रिय प्रलोभनों से सावधान रहने की आवश्यकता है, जो वर्तमान के प्रलोभनों से भरे परिवेश में कोई सरल कार्य नहीं; क्योंकि यह सतत जागरूकता की माँग करता है।

इंद्रिय प्रलोभनों का स्वरूप ही कुछ ऐसा होता है कि ये व्यक्ति को पहले तो लुभाते हैं, जब व्यक्ति इनके समीप जाता है तो उसे अपने नागपाश में बाँधकर उसके प्राण हर लेते हैं। विषय-भोगों में लिप्त भोगी जिस सुख का आनंद लेने का बोध पाता है, वह उसकी जीवनीशक्ति की कीमत पर होता है। हर सुखभोग की व्यक्ति अच्छी खासी कीमत चुकाता है और अंत में ठगा हुआ-सा अनुभव करता है। क्षणिक सुख की नश्वरता के बोध के बीच श्मशान वैराग्य जैसी मोहभंग की स्थिति आती है, लेकिन यह प्राय: स्थायी नहीं रहती। इससे उबरने के बाद अगले प्रलोभन के साथ फिर वही प्रलोभनों के मोह-आकर्षण का दौर प्रारंभ होता है। इस चक्रव्यूह से बचे रहना या इससे बाहर निकलना भारी विवेक एवं सूझ-बूझ की माँग करता है अन्यथा इसके अभाव में आएदिन, हर पल कितने लोग पतंगों की भाँति विषय-भोग एवं प्रलोभनों की इस अग्निशिखा में झुलसकर अपने वजूद को स्वाहा कर रहे होते हैं।

यहाँ पर इंद्रिय-उपभोग को पूर्णतया गलत भी नहीं बताया जा रहा। अपनी मर्यादा एवं सीमा में जीवन के सुखभोग का अपना महत्त्व है। इंद्रियों की संयमित तृप्ति का अपना चिकित्सकीय एवं मनोवैज्ञानिक आधार है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से इनका सम्यक उपभोग महत्त्व रखता है, लेकिन प्रलोभनों के मायाजाल में इंद्रिय व मन का अतिशय उपभोग निंदनीय है। असंयम किसी भी रूप में हितकर नहीं, जिससे उबरना साधना एवं आंतरिक प्रगति की दृष्टि से हर हालत में अभीष्ट रहता है।

इस प्रक्रिया में जब प्राण आवश्यक उपभोग के बाद संरक्षित होता है, संचित होता है, तो व्यक्ति प्राणवान बनता है, ओजस्वी बनता है। यही प्राण विचारों को तेजस्वी तथा व्यक्तित्व को वर्चस्वी बनाता है, लेकिन इसका आधार इंद्रिय संयम होता है। अत: हर युग में मानव प्रकृति के विशेषज्ञों ने एक ही बात कही है—इंद्रिय प्रलोभनों से सावधान। यदि कोई व्यंजन या आहार बहुत स्वादिष्ट लग रहा है तो सावधान। इसके असीमित उपभोग से बचना। इसका संयमित होकर उपयोग करना। यही जीवन के अन्य भोगों के संदर्भ में भी सत्य है, जो व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं संतुलन की दृष्टि से हितकारी रहता है। इस संदर्भ में असंयमित आचरण के दुष्परिणाम व्यक्ति को तत्काल ही भोगने पड़ते हैं, जो न सँभलने पर आगे चलकर गंभीर दुष्परिणाम लाते देखे जा सकते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 2 के श्लोक 62-63 में भगवान श्रीकृष्ण मोहग्रस्त अर्जुन को इस संदर्भ में सचेत करते देखे जा सकते हैं कि इंद्रिय-विषयों का चिंतन करते-करते मनुष्य की उन इंद्रिय-विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से काम और इससे क्रोध प्रकट होता है। क्रोध से मोह व मोह से स्मृतिलोप होता है, जो बुद्धि के विनाश का कारण बनता है। अंतत: व्यक्ति का अध:पतन होता है।

इस तरह प्राणहंता सौंदर्य एवं सुख-साधनों से सजग-सावधान रहने की आवश्यकता है, जो व्यक्ति की बुद्धि को भ्रमित करते हैं और घातक आकर्षण बनकर उपभोक्ता के प्राण, जीवनीशक्ति, मनोयोग-एकाग्रता एवं भावनात्मक संतुलन को डाँवाडोल कर व्यक्ति को निस्तेज, विक्षिप्त, संतप्त अवस्था में ला छोड़ते हैं। यदि हम अपने स्वामी आप हैं, तो हमारा अधिकार है कि हम इन आकर्षणों, प्रलोभनों से किस तरह निपटें, इनसे कितना संबंध रखें।

हम अपने प्रति कितने ईमानदार हैं, कितने समझदार हैं, हम अपने प्रति कितने जिम्मेदार हैं एवं वास्तव में कितने बहादुर हैं, इसकी परीक्षा हर प्रलोभन का सामना होते ही शुरू हो जाती है। अब इन सबके बीच हम निखरकर निकलते हैं या लुट-पिटकर, यह हमारी साधनात्मक तैयारी पर निर्भर करता है। यदि इनके समक्ष घुटने टेक दिए तो मुख में कालिख पुतने जैसी स्थिति आ जाती है, ग्लानि भाव एवं आत्मसम्मान की न्यूनता के साथ जीवन बदरंग हो जाता है, आत्मविश्वास दुर्बल हो जाता है और यदि विजयी होकर इस संघर्ष के पार निकलते हैं तो एक नए विश्वास के साथ जीवन में एक नूतन लय, नए रंग एवं नवीन संगीत का संचार होता है।

यहाँ परमपूज्य गुरुदेव द्वारा दिए गए युग निर्माण सत्संकल्प के पहले चार सूत्रों की चर्चा समीचीन होगी, जो इस संदर्भ में एक साधक के जीवन में प्रेरक मंत्र की तरह मार्गदर्शन करते हैं। ये सूत्र हैं—हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे। शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे। मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे। इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।

युग निर्माण सत्संकल्प के इन प्राथमिक सूत्रों में संयमित जीवन का सार तत्त्व समाया हुआ है व साथ ही व्यावहारिक मार्गदर्शन भी कि किस तरह इसके अनुशासन को हम अपने जीवन में धारण करें। ये सूत्र एक साधक के नित्य पाठन की विषयवस्तु होने चाहिए, जिससे कि इनके सुमिरन से विवेकपूर्ण जीवन का मार्गदर्शन प्रशस्त होता चले। ❑

भगवान बुद्ध एक बार आनंद के साथ एक सघन वन में से होकर गुजर रहे थे। रास्ते में ज्ञानचर्चा भी चल रही थी। आनंद ने पूछा—"देव! आप तो ज्ञान के भंडार हैं। आपने जो जाना क्या आपने वह सब हमें बता दिया?" बुद्ध ने उलटकर पूछा—"इस जंगल में भूमि पर कितने सूखे पत्ते पड़े होंगे? फिर हम जिस वृक्ष के नीचे खड़े हैं, उस पर चिपके सूखे पत्तों की संख्या कितनी होगी? इसके बाद अपने पैरों तले जो अभी पड़े हैं, वे कितने हो सकते हैं?"

आनंद इन प्रश्नों का उत्तर देने की स्थिति में नहीं थे। मौन तोड़ते हुए तथागत ने स्वयं ही कहा—"ज्ञान का विस्तार इतना है, जितना इस वन प्रदेश में बिछे हुए सूखे पत्तों का परिवार। मैंने इतना जाना, जितना ऊपर वाले वृक्ष का पतझड़। इसमें भी तुम लोगों को इतना ही बताया जा सका, जितना कि अपने पैरों के नीचे कुछेक पत्तों का समूह पड़ा है।"

वास्तव में ज्ञान का समुद्र अत्यंत विशाल है। उसकी थाह कोई ले नहीं सकता। यह मान बैठना कि थोड़े ही प्रयासों से ज्ञानार्जन हो सकेगा एक आत्मप्रवंचना भर है, किंतु प्रयास इसी दिशा में होते रहना चाहिए।

आध्यात्मिक जीवन का आधार है त्याग

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने अपने लेखन व प्रवचनों में एक बात कही है कि अध्यात्म जिंदगी का शीर्षासन है। जिंदगी का शीर्षासन होने का मतलब यह है कि हमारी सांसारिक जिंदगी के जो मानदंड हैं, वो आध्यात्मिक जीवन के सर्वथा विपरीत हैं। इस सृष्टि में संसार और सांसारिकता के अपने मानदंड हैं और आध्यात्मिकता के अपने मानक हैं। सांसारिकता के जो मानदंड हैं, जो मानक हैं वो आध्यात्मिकता के सर्वथा विपरीत हैं, इसका तात्पर्य है कि जिन्हें संसार उपलब्धियाँ समझता है, जिन्हें संसार गौरव समझता है, आध्यात्मिक जीवन के लिए वो बोझ बन जाते हैं।

आध्यात्मिक जीवन में जो प्रक्रियाएँ हैं, जो बातें कही गई हैं, जो अनुशासन बताए गए हैं, जो नियम बताए गए हैं, जो मर्यादाएँ बताई गई हैं, जो गति और विकास के मानदंड बताए गए हैं, वो सांसारिक प्रवृत्तियों के सर्वथा विपरीत हैं, इसलिए आध्यात्मिक जीवन के लिए सबसे पहले हमें अपनी सांसारिक उपलब्धियों के बोझ से मुक्त होना होता है।

अगर हम देखें तो पतंजलि अपना योगसूत्र शुरू करने के पहले योगाभ्यास, योग-अनुशासन बताने के साथ ही यम-नियम की बात करते हैं। यम-नियम क्या हैं? यम-नियम ये हैं कि हमारा जीवन, हमारा मन, हमारा तन भटके नहीं, इसमें भटकाव न आए और इसमें अस्थिरता लाने वाले, चंचलता लाने वाले कारण समाप्त हो जाएँ। यम को परिभाषित करते हैं तो वे कहते हैं कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

इसमें पतंजलि जो अपरिग्रह की बात करते हैं, इसका मतलब है कि हमारे पास ज्यादा चीजें, ज्यादा वस्तुएँ नहीं रहें; क्योंकि आप देखिए कि जिनके पास परिग्रह है, जिनके पास बहुत सारा साधन, सामान, संपत्ति है, उनके साज-सँभाल में सारा मन चला जाता है। चिंता करनी पड़ती है कि यह सामान खराब तो नहीं हो गया। वस्तुओं को सँभालने में ही सारा दिमाग चला जाता है। अगर गहराई से देखा जाए तो ये यम-नियम क्या हैं? एकाग्रता के साधन हैं, जिनको हम त्याग कहते हैं। वो त्याग—आध्यात्मिक जीवन की आवश्यकता है, अनिवार्यता है।

सांसारिक दृष्टि से हम बड़ा आदमी किसे कहते हैं? जिसने जितना अधिक स्वार्थ को पूरा किया, जितना अधिक अहंकार को प्रतिष्ठित किया। स्वार्थपरता जहाँ चरम पर है, जहाँ अहंकार शिखर पर है, उसे हम उपलब्धिवान व्यक्ति कहते हैं, इसके पास बड़ी उपलब्धियाँ हैं, बड़ा गौरव है और आध्यात्मिक जीवन में वह बड़ा व्यक्ति है, जिसने स्वार्थ का त्याग कर दिया, अहंकार का त्याग कर दिया, अहंकार को छोड़ दिया। स्वार्थ व अहंकार को त्यागने वाला व्यक्ति भी सांसारिक जीवन में रहकर अपना कार्य करता है। ऐसा नहीं है कि त्याग का मतलब है कि वह संसार को छोड़कर कहीं वन में जाकर रहने लगे, बल्कि त्याग का मतलब है कि अब उसका स्वार्थ व अहंकार न्यूनतम हो गए हैं।

भारतीय संस्कृति में त्यागरूपी जीवन जीने वाले संन्यासी कहे गए हैं। भगवान गीता में संन्यास को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि संन्यासी वो नहीं है, जिसने अग्नि का त्याग कर दिया हो, जिसने कर्म का त्याग कर दिया हो। वो संन्यासी नहीं है, फिर संन्यासी कौन है? कहते हैं—**ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।** *(गीता-5/3)* वो नित्य संन्यासी मानने योग्य है जो किसी से द्वेष नहीं करता, जिसको किसी चीज की आकांक्षा नहीं है।

त्याग को हम कई तरह से परिभाषित करते हैं और त्याग को समझने की कोशिश भी करते हैं। अब सवाल उठता है कि क्या त्यागें? तो इसका उत्तर है कि आसक्ति त्यागें, अहंकार त्यागें, स्वार्थ त्यागें और अहंता को त्याग दें, यही संन्यास है, यही त्याग है; क्योंकि सांसारिक चीजों में हम जितना गहरे में स्वार्थी होंगे, जितना अपने बारे में सोचेंगे, अहंकार के बारे में सोचेंगे कि मुझे ये मिलना चाहिए, ये मेरा है, उतना ही हम ज्यादा संकीर्ण होते चले जाएँगे। हम कुछ कर नहीं सकते, हमारी संकीर्णता बढ़ती जाएगी, हम सिकुड़ते जाएँगे, हमारा चित्त अशुद्ध होता जाएगा, हमारा व्यक्तित्व सिमटता चला जाएगा। कितना

सिमटेगा ? पता नहीं कहाँ तक सिमटता चला जाएगा, अनवरत सिमटता रहेगा और जैसे-जैसे हम आसक्ति का त्याग करते जाएँगे, वैसे-वैसे हमारा व्यक्तित्व व्यापक व विशाल हो जाएगा।

उपनिषद् कहते हैं कि केवल त्याग से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। जिसने त्यागना सीख लिया, वो समझो कि अमृतपान करने लगा। जो त्याग के विपरीत चल रहा है, वो समझो विषपान कर रहा है क्यों ? विषपान इसलिए कर रहा है; क्योंकि पहली बात—संसार में कुछ भी पुण्य के बिना, तप के बिना नहीं मिलता। आप यहाँ से कुछ भी उठाएँगे और उस वस्तु के अनुरूप आपका पुण्य उसमें लगता चला जाएगा और इससे आपकी यथार्थ पूँजी लुप्त होती चली जाएगी।

संसार में रहकर व्यक्ति जिन चीजों का उपभोग करता है, उनकी एक कीमत है। इसलिए सांसारिक सुखभोग के अनुरूप व्यक्ति का उतना ही पुण्य, उतना ही तप क्षीण हो जाता है, कट जाता है। इतना सुख आपने भोगा, आपका उतना पुण्य इसमें खप गया। संसार में प्रकृति की, परमात्मा की कंप्यूटराइज्ड व्यवस्था है। हम जो कर्म करते हैं, अच्छा-बुरा, श्रेष्ठ-निकृष्ट जो भी करते हैं, वो उस कंप्यूटराइज्ड व्यवस्था के तहत नोट हो जाता है; क्योंकि आपने तो कर्म किया, भले ही कैसी भी परिस्थितियों में किया, किन परिस्थितियों में किया, यह माने नहीं रखता और उस कर्म के अनुरूप कर्मफल विधान हम पर अनिवार्य रूप से लग जाता है।

परिस्थितियाँ माने नहीं रखतीं, कर्म माने रखता है और कर्म चाहे कोई भी करे, उसका फल उसे भुगतना पड़ता है। ऐसा नहीं कि परमेश्वर आकर स्वयं कर्म करें तो वो बच जाएँगे। नहीं, बचेगा कोई नहीं। कर्म का विधान अनिवार्य है और इसे कौन नोट करता है ? इसका लेखा-जोखा कौन रखता है ? इसका लेखा-जोखा प्रकृति रखती है। इसका लेखा-जोखा प्रकृति की व्यवस्था रखती है। यहाँ पर कुछ भी मुफ्त में नहीं मिलता।

ज्ञानीजन जानते हैं कि इस संसार की वास्तविक पूँजी क्या है ? इस संसार में वास्तव में कौन धनवान है ? स्थूलदृष्टि से जिसके पास बैंक में बहुत पैसा है, वो धनवान है; लेकिन प्रकृति की नजरों में धनवान वो है, जिसके पास पुण्य है, जिसके पास तप है। जो समझदार व्यक्ति हैं, वे अपने पुण्य का उपयोग, तप का उपयोग लोकसंग्रह में, लोकसेवा में करते हैं, सुख-भोग में नहीं करते। इंद्रियों की तृप्ति में नहीं करते।

हम समझते हैं कि त्याग में हम गँवाते हैं। नहीं, त्याग में हम पाते हैं। आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि त्याग है। इसलिए उच्चतम साधना, श्रेष्ठतम साधना व श्रेष्ठतम अनुशासन जिनको कहते हैं—वो विवेक और वैराग्य हैं। विवेक और वैराग्य क्यों हैं ? क्योंकि विवेक और वैराग्य जितना दृढ़ होते हैं, उतना हमारा व्यक्तित्व स्थिर और शांत होता है। इससे हमारे तन और मन में स्थिरता आती है। जितना-जितना हमारे विवेक व वैराग्य क्षीण होते जाते हैं, उतना-उतना ही हम अस्थिर होते चले जाते हैं। निश्चित रूप से वो सुखी और संतुष्ट होता है, जिसमें विवेक और वैराग्य होते हैं।

रहीम एक दोहा कहते हैं—**गोधन, गजधन, बाजिधन और रतनधन खान। जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान॥** कहते हैं कि गौएँ बहुत हैं—गोधन है, गजधन

उपभोग और संग्रह का अनावश्यक लालच, संबंधियों के प्रति अनुपयुक्त व्यामोह, अहम् का उद्धत परिपोषण—इन तीनों का समुच्चय ही वह त्रिशूल है, जो जीवन संपदा को अस्त-व्यस्त करता है और स्त्रष्टा के उपहार को दुर्भाग्य में बदलता है।

बहुत है—हाथी बहुत हैं, घोड़े बहुत हैं और रतनधन—सोना, चाँदी के जवाहरात बहुत हैं। यह सारा धन अपनी-अपनी जगह पर है; लेकिन संतोष धन मिल जाए और इससे व्यक्ति संतुष्ट हो जाए तो फिर अन्य सभी धन फीके हैं, सारी उपलब्धियाँ फीकी हैं और संतोष किसको मिलता है ? त्याग करने वाले को।

पतंजलि कहते हैं कि संतोष से आत्मसुख की प्राप्ति होती है। कहते हैं कि यों तो मन भागता ही रहेगा, भागता ही रहेगा। यों तो चंचलता जीवन में बढ़ती रहेगी, अस्थिरता बढ़ती रहेगी, लेकिन अगर विवेक और वैराग्य हों, तो वह निरुद्ध अवस्था में पहुँच जाएगा, रुक जाएगा, थम जाएगा—**अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥** त्यागपूर्ण जीवन ही आध्यात्मिक जीवन का मूल आधार है। ❑

प्राणशुद्धि बनाती है प्रज्ञावान

प्राण जीवन का आधार है, यह जीवन को धारण करता है। प्राण हमारे शरीर को बल प्रदान करता है, हमारे अस्तित्व को आधार प्रदान करता है। प्राण के कई रूप होते हैं। प्राण का पहला रूप है—जीवनीशक्ति। प्राण का दूसरा रूप है—भावना। प्राण का तीसरा रूप है—परिष्कृत भावना यानी बोध, भक्ति। ये सब प्राण के ही रूप हैं।

प्राण ही हमारे शरीर और मन को बाँधे रखता है। एक डोर से बाँधे रखता है। हमारे स्थूलशरीर और सूक्ष्म शरीर को कौन बाँधता है? प्राण। प्राण की डोर टूटी कि स्थूलशरीर से सूक्ष्मशरीर अलग हुआ। हमने जो कर्म किए, जो विचार किए, जो बोध किया, जो संग्रह किया, जो कर्मों का संग्रह किया, जो संस्कारों का संग्रह किया—वो सब तभी तक है, जब तक हमारे शरीर में प्राण है, शरीर से प्राण निकलते ही हम इस शरीर से कुछ भी नहीं कर सकते।

प्राण का रहना और प्राण का जाना महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है। महत्त्वपूर्ण घटना क्या है? प्राण को परिभाषित करते हुए पतंजलि कहते हैं—**क्षीयते प्रकाशावरणम्**—प्राणायाम-साधना के द्वारा हमारे चित्त पर, हमारी जीवात्मा के प्रकाश पर जो आवरण पड़ा हुआ है, यह जो परदा पड़ा हुआ है, वो हट जाए। प्राणों को नियंत्रित करते हुए, प्राणों को वशीभूत करते हुए जीवात्मा के प्रकाश के ऊपर जो आवरण पड़ा है, वो हट जाए। तब ही प्राणों की वासना भावना में बदल सकती है।

हमारे शास्त्र संसार में हर वस्तु के तीन रूप कहते हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक। फिर हम कहते हैं कि तीन गुण भी होते हैं—तामसिक, राजसिक और सात्त्विक। प्राणों का तामसिक रूप ही वासना है। प्राणों का राजसिक रूप ही साहस है। प्राणों का सात्त्विक रूप ही भावना है, भक्ति है। तमस् का सत्त्व में परिवर्तन तो हो। तभी तो प्राण वशीभूत होंगे।

बार-बार भगवान कहते हैं—**गतासूनगतासूंश्च,** जो चले गए और जिनके प्राण नहीं गए। प्राणों का जाना और प्राणों का नहीं जाना महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है, शोक के योग्य घटना नहीं है। फिर शोक की घटना क्या है? प्राणों के रहते क्या तुम प्रज्ञावान बने? प्राणों के रहते हुए क्या तुमने **क्षीयते प्रकाशावरणम्**—अपने अंतर्मन के प्रकाश पर पड़ा हुआ आवरण तोड़ा?—यह महत्त्वपूर्ण घटना है। महत्त्वपूर्ण घटना यह है कि प्राणों के रहते-रहते तुमने क्या किया। अगर प्राणों के रहते हुए तुम प्रज्ञावान नहीं बने तो तुम शोक के योग्य हो। भगवान इसका संकेत भी करते हैं दूसरे अध्याय में—**एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।**

अगर अंतकाल में, प्राणों का अंतिम कण भी रह गया, प्राणों की अंतिम डोर भी बँधी रह गई और उसमें भी यह स्थिति आ गई कि आवरण टूट गया तो जीवात्मा, **ब्रह्म निर्वाणमृच्छति**—ब्रह्म को, निर्वाण को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए भगवान यहाँ प्राणों की बात करते हैं और साथ ही प्रज्ञावान होने की बात करते हैं; क्योंकि प्राणों का प्रज्ञा से संबंध है। पतंजलि भी यही बात करते हैं कि **क्षीयते प्रकाशावरणम्।** प्राणायाम का फल यही है, इससे हमारी अंतरात्मा के प्रकाश पर पड़ा हुआ आवरण क्षीण होता है।

हमारे शरीर में मुख्य रूप से अपान, प्राण, व्यान, उदान, समान—ये पंचप्राण कहे जाते हैं। इनमें दो प्राणों की चर्चा विशेष रूप से यहाँ की गई है—प्राण और अपान। हमारी जीवन की जो मूल ऊर्जा है, वह यहीं प्राण और अपान में रुकी हुई है। अधिकांशतः अपान में रुकी हुई है और बाकी प्राण में रुकी हुई है।

अपान वायु, प्राण का वो स्वरूप है, जो नाभि के नीचे के संपूर्ण जीवन को नियंत्रित, नियमित और संपादित, निष्पादित करती है। प्राण वायु, प्राण का वह स्वरूप है, जो हमारी नाभि के ऊपरी हिस्से में यानी हृदयकेंद्र में रहती है।

इनसान का जो जैविक स्वरूप है, उसके तीन ही पर्याय हैं—काम, भूख और नींद। यही मनुष्य को पशु बनाते हैं। यह अपान वायु की अशुद्ध अवस्था ही मनुष्य को पशु बनाती है। हम जब कहते हैं जीव का पाश से विमुक्त होना,

तो यह पाश क्या है ? हठयोग की भाषा में कुंडलिनी शक्ति का पाश है, जो उसे साढ़े तीन घेरों में बाँधे हुए है, इस अपान को जकड़े हुए है, इसके कारण जीव को बार-बार वासना के कुंड में जाना पड़ता है, यह वासना ढलती ही नहीं है और वो वासना से मुक्त नहीं हो पाता है और तब तक मुक्त नहीं होता है, जब तक कि जीवन की कुंडलिनी की ऊर्जा प्रबुद्ध न हो, जाग्रत न हो, उस जाग्रति का पहला चरण है—**अपाने जुह्वति प्राणं,** अपान वायु में प्राण वायु का हवन करना।

आप देखिए कि हम अपान का दमन करते रहते हैं यानी अपनी वासनाओं को दबाते रहते हैं, उन्हें नियंत्रित व रूपांतरित नहीं कर पाते और इसका परिणाम यह होता है कि अपान अनेक ग्रंथियों में बँध जाता है। अगर अपान प्राण बँधा हुआ है, अपान ग्रंथि बँधी हुई है, अपान प्राण अवरुद्ध है तो इसके कारण उदर रोग होते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण हमारी इस अपान ऊर्जा के रूपांतरण का एक मार्ग देते हैं और हमको एक यज्ञ सिखाते हैं और कहते हैं—**अपाने जुह्वति प्राणं,** अपान में प्राण का हवन करो, अपनी वासना को भावना से परिपूर्ण करो, फिर देखो, यह भावना ही तुम्हारा रूपांतरण करेगी। यह भावना ही तुम्हें अपान की ग्रंथियों से मुक्त करेगी।

जब महर्षि अष्टावक्र, महाराज जनक को उपदेश देते हैं तो बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं—जनक! मैं तुम्हारे नाभि (उदर) की और हृदय की शल्यक्रिया करके तुम्हें मुक्त कर दूँगा। यह उदर की शल्यक्रिया और हृदय की शल्यक्रिया क्या है ? यह है—**अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।** अर्थात पहले अपानकेंद्र में प्राण का हवन और फिर अपान के शुद्ध हो जाने के उपरांत प्राणकेंद्र में अपान का हवन।

हमारा वर्तमान जीवन ऐसा इसलिए है; क्योंकि वह प्रेमविहीन हो गया है, भावनाविहीन हो गया है। भगवान कहते हैं कि अपान अगर दुर्बल हो जाए, तो जैविक प्रकृति की क्षुधा बढ़ जाती है और प्राण दुर्बल हो जाए, तो भावुकता बहकती रहती है। भावुकता भावना में परिवर्तित ही नहीं हो पाती है। अगर प्राण और अपान की गति रुद्ध हो जाए, प्राणायाम सिद्ध हो जाए, तो इस प्राणायाम के प्रकाश से हमारे प्राण और अपान दोनों प्रकाश से परिपूर्ण हो सकते हैं।

अपान में प्राण का हवन करना यानी अपनी वासनाओं में भावना घोलना है; इसीलिए कहते हैं कि भक्ति, रूपांतरण का अद्‌भुत रसायन है। जब प्राणों में प्रेम उठता है, जब प्राणों में पुकार उठती है, जब प्राणों में तड़प उठती है ईश्वर प्रेम की, तो यह रूपांतरण संभव हो पाता है।

जब शुद्ध अवस्था में प्राण और अपान मिलते हैं, तो आध्यात्मिक कर्मों की सृष्टि होती है। जब भगवान कहते हैं—**प्राणापानगती रुद्ध्वा,** यानी जब प्राण और अपान की गति रुद्ध होती है, तो हमारी जैविक व मानसिक ऊर्जा, आध्यात्मिक ऊर्जा में रूपांतरित होती है, जीवन का आकाश बदलता है, जीवन के स्वर बदलते हैं, जीवन के आयाम बदलते हैं।

जब भगवान कहते हैं कि अपान में और प्राण में बड़ी गाँठें पड़ गई हैं, तो इसका मतलब है कि उसमें वासना और भावना की गाँठें पड़ गई हैं। आप देखिए कि दुनिया के ज्यादातर आदमी उदर और हृदय रोग से पीड़ित रहते हैं; क्योंकि ये जो गाँठें व्यक्ति के उदर व हृदय-क्षेत्र में हैं, ये सूक्ष्मशरीर की गाँठें हैं, स्थूलशरीर में ये केवल अपनी अभिव्यक्ति करती रहती हैं। इन गाँठों को खोलना है, भगवान कहते हैं कि ये कैसे खुलेंगी ?

भगवान कहते हैं कि बड़ा आसान तरीका है। वासना और भावनाओं को तुम धो डालो, इनकी समिधा बना करके प्राणयज्ञ में इनकी आहुति दे दो। इससे एक ऐसा परिशोधन, एक ऐसा परिष्कार होगा, जिससे तुम्हारे अंदर आध्यात्मिक प्रकृति का उदय होगा, आध्यात्मिक ऊर्जा विकसित होगी; फिर तुम्हारी भावनाएँ और तुम्हारी वासनाएँ संपूर्ण रूप से दुर्गंध से मुक्त हो जाएँगी और एक ऐसी सुरभि, एक ऐसी सुगंध तुम्हारे व्यक्तित्व से फूट पड़ेगी जिससे जीवन एक महोत्सव बन जाएगा। यह एक तरह से प्राणयज्ञ है, जो हमको परिपूर्ण रूप से परिशोधित करता है। यह हमारी वासनाओं और भावनाओं, दोनों को शुद्ध करता है और ऐसा होने पर ही व्यक्ति की अंतरात्मा के प्रकाश पर पड़ा हुआ आवरण क्षीण हो जाता है और वह प्रज्ञावान बन पाता है।

इस तरह प्राण जो हमारी जीवनीशक्ति है, भावनाओं के माध्यम से हमारे मन के विचारों, कल्पनाओं व अनुभवों में प्रवाहित होती है, यह परिशुद्ध हो जाने पर बोध व भक्ति में रूपांतरित होती है और उसे प्रज्ञावान बनाती है। ❑

टहलना भी है व्यायाम

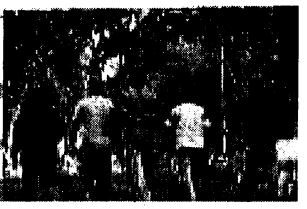

पैदल चलना दैनिक जीवन का एक सामान्य-सा कृत्य है, लेकिन इसे दैनिक जीवन में एक व्यायाम का स्थान दिया जा सकता है। विशेषकर बुजुर्ग, बीमार या शारीरिक रूप से भारी व्यायाम न कर पाने की स्थिति में व्यक्ति के लिए यह बिना खरच की एक उपयोगी क्रिया है। यह एक सरल प्रक्रिया है, जिसमें अपना भार ही व्यायाम का माध्यम बनता है। इसे यदि दिन में आधा घंटा भी नियमित रूप से समय दिया जाए तो इसके लाभ अनेक हैं, जो व्यक्ति के तन से लेकर मन को स्वस्थ एवं नीरोग रखने में कारगर भूमिका निभा सकते हैं।

सामान्यतया हम इसके प्रति लापरवाह पाए जाते हैं व इसके लाभों को नजरअंदाज कर रहे होते हैं; जबकि यह तन-मन के लिए तमाम फायदे लिए होता है। चलते रहने से सीधे हमारे अंग-प्रत्यंगों की विशेषकर पैरों की मांसपेशियाँ व हड्डियाँ मजबूत होती हैं, घुटनों का व्यायाम होता है। इसके साथ हमारा रक्त संचार गतिशील होता है तथा हृदय व फेफड़े सशक्त बनते हैं, मस्तिष्क अधिक सक्रिय हो जाता है, मन की एकाग्रता बढ़ती है। इनके साथ ही उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, मधुमेह, स्मृतिलोप एवं मोटापे जैसे रोगों में प्रत्यक्ष लाभ होता है।

सैर को व्यायाम के रूप में कभी भी व किसी भी समय शुमार किया जा सकता है। हालाँकि प्रातःकाल का भ्रमण सबसे अधिक लाभदायक रहता है। उस समय वायुमंडल में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ी-चढ़ी होती है, वातावरण सकारात्मक स्पंदनों से भरा होता है। लेकिन टहलने के प्रयोग को दिन के किसी भी खाली समय में आजमाया जा सकता है। इसके लिए आधा घंटा पर्याप्त माना जा सकता है। यदि एक साथ इतना समय नहीं प्राप्त हो पाए तो इसे दस-दस मिनट के तीन टुकड़ों में बाँटा जा सकता है। यदि बाहर टहलने की स्थिति न हो तो घर की छत, आँगन या बरामदे में भी अपने कदमों के नाप के हिसाब से या मिनटों के हिसाब से इसको पूरा किया जा सकता है।

नियमित व निर्धारित समय पर टहलने के साथ हम इसे विभिन्न रूपों में अपनी दिनचर्या का अंग बना सकते हैं। यदि भवन कई मंजिल ऊँचा हो तो लिफ्ट के बजाय सीढ़ियों का उपयोग करते हुए व्यायाम का लाभ ले सकते हैं। सार्वजनिक वाहन में यात्रा करते समय निर्धारित बस स्टॉप से पहले स्टेशन पर उतरकर कुछ दूर पैदल चल सकते हैं। कैंपस में वाहन के बजाय पैदल टहलते हुए आ-जा सकते हैं। घर के पास के गली-मुहल्लों व दुकानों तक पैदल जा सकते हैं। पालतू कुत्ते को टहलाते समय पैदल चलने की आवश्यकता भी पूरी की जा सकती है।

धीरे-धीरे चलने से, सामान्य गति में टहलने पर इसके सामान्य लाभ मिलते हैं, लेकिन यदि इसके माध्यम से शरीर का भार कम करना हो, या अतिरिक्त स्टेमिना विकसित करना हो तो इसकी आवृत्ति एवं गति को बढ़ाया जा सकता है। समय की अवधि आधा घंटा से अधिक कर सकते हैं, गति इतनी कर सकते हैं कि साँस तेज होने लगे व पसीना छूटने लगे।

टहलने को और कसरती बनाने के लिए कुछ अनुपात में इसे कठिन कर सकते हैं। समतल के बजाय खड़ी ढलान या पहाड़ी पर पैदल चलने का अभ्यास किया जा सकता है। पीठ में या हाथ में वजन लेकर पैदल चला जा सकता है। चलने की गति या चलने की दूरी को बढ़ा सकते हैं या अपनी क्षमता के अनुरूप अधिक समय तक टहलने का अभ्यास भी हम कर सकते हैं।

टहलने का पूरा लाभ लेने के लिए इससे जुड़ी कुछ सावधानियों को भी बरतने की आवश्यकता है। टहलने से पूर्व कुछ वार्मअप कसरतें अवश्य करें। जैसे— शरीर के अंगों को स्ट्रेचिंग करना, धीरे-धीरे टहलने की गति को बढ़ाना। इसी तरह टहलने के बाद शरीर को शिथिल भी अवश्य करें, जिसमें शवासन से लेकर ध्यान के प्रयोग किए जा सकते हैं। टहलने के लिए जूतों पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। जूते आरामदायक हों, सही पकड़ के

हों, तो टहलने का अनुभव अधिक सुखद एवं आरामदायक रहता है। साथ ही मौसम के हिसाब से कपड़ों का चयन भी किया जा सकता है।

टहलने को एक आनंददायी अनुभव बनाया जा सकता है। टहलने का मार्ग यदि स्वच्छ, निर्मल एवं प्राकृतिक वातावरण से होकर गुजरता हो तो सैर की गुणवत्ता बढ़ जाती है। राह के सुंदर प्राकृतिक दृश्य नेत्रों को सुकून देते हैं, चित्त में प्रसन्नता का भाव जगाते हैं। निर्मल हवा में हर श्वास के साथ प्राणशक्ति के संवर्द्धन का भाव सुदृढ़ होता है। लयबद्ध श्वास के साथ टहलते हुए प्रकृति के साथ एकात्मकता का भाव सैर को एक आध्यात्मिक अनुभव बना देता है। प्रातः, दोपहर, सायं एक ही मार्ग भिन्न-भिन्न अनुभव देता है, इसी तरह अलग-अलग ऋतुओं में एक ही राह भिन्न-भिन्न अनुभव का माध्यम बन सकती है।

इस तरह टहलने को एक स्वास्थ्यवर्द्धक व्यायाम के रूप में अपनाया जा सकता है, जिसके फायदे अनेक हैं व यह बिना किसी खरच का व्यायाम है। इसको हम जितना जल्दी जीवन का एक अभिन्न अंग बनाएँ, उतना ही उत्तम होगा। इसके माध्यम से हम अतिरिक्त जीवट भी विकसित कर सकते हैं। बच्चे, बुजुर्ग एवं शारीरिक रूप से भारी कसरत न कर पाने वालों के लिए यह विशेष रूप से अपनाए जाने योग्य है। ❑

संतों के लिए सभी समान हैं। पापी को वे अपनी सहृदयता से आचरण सुधारने की सीख देते व सफल होते हैं। जेकब के पास धन का अपार भंडार था, जिसे उसने जनता से क्रूरतापूर्वक वसूल कर एकत्रित किया था। अपनी अमानुषिक यातनाओं के लिए वह कुख्यात हो चुका था। जब वह बाहर निकलता तो लोग नगर से भागकर जंगलों में छिपने लगते।

एक दिन प्रभु ईसामसीह उसके नगर में आए। गरीबों के प्रभु आ रहे थे। जनता उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ी। जेकब भी प्रतीक्षा कर रहा था। ईसा उसके पास से निकले तो देखते ही बोले—"आज तुम्हारे यहाँ निवास करूँगा।" एक कुख्यात व्यक्ति के ऊपर ईसा को कृपा करते देखकर जनता की श्रद्धा डगमगा उठी। बहुत से लोग निंदा करने लगे, परंतु उनकी प्रतिक्रियाओं से उसे क्या लेना-देना, जो ऊँचे उद्देश्यों के लिए चल पड़ा हो। अब तक के विरोधों एवं आलोचनाओं से जो न सुधर सका था, ईसा की स्नेहिल करुणा का संस्पर्श पाकर जेकब का हृदय ही परिवर्तन हो गया।

उन्हें विदा करते समय उसने कहा—"प्रभु! अपनी आधी संपत्ति आप के शुभागमन के उपलक्ष्य में उन लोगों के उत्थान में खरच करूँगा, जो किसी भी कारण दुःखों तथा अभावों का जीवन जी रहे हैं। जिनसे अनुचित उपायों द्वारा धन प्राप्त किया है, उन्हें भी चौगुना धन वापस करने का वचन देता हूँ।" लोगों ने जेकब का हृदय-परिवर्तन देखा तो उन्हें ईसा के उसके यहाँ रुकने का उद्देश्य समझ में आ गया।

सच्ची हो साधना तो सिद्धि सुनिश्चित है

साधना-पथ पर चल रहे साधकों के मन में साधना में सफलता को लेकर अगणित शंकाएँ, आशंकाएँ जन्म लेती हैं। अक्सर हमें लगता है कि हमें साधना करते कितने वर्ष बीत गए, पर अब तक हमें कोई ऊँची उपलब्धि हासिल न हो सकी। हमने अपने जीवन में कई अनुष्ठान किए, तीर्थयात्राएँ कीं, शास्त्रों का स्वाध्याय किया पर फिर भी हमें कोई यथोचित लाभ प्राप्त क्यों नहीं हुआ? हमने सद्गुरु से दीक्षा ली, फिर भी हमारी साधना सफल क्यों नहीं हो सकी आदि प्रश्न अक्सर हमारे मन में उठते हैं।

इसी उधेड़बुन, दुविधा और द्वंद्व में कई लोग साधना से ही मुँह मोड़ लेते हैं। बीच में ही साधना-पथ का परित्याग कर देते हैं। सच तो यह है कि साधना यदि सचमुच सही दिशा में हो, और साधना से जुड़े नियम-अनुशासन एवं संयम आदि का यथोचित पालन किया जाए तो साधना में सफलता न मिलने की दूर-दूर तक कोई संभावना ही नहीं है। साधना में सफलता शत-प्रतिशत सुनिश्चित है, पर समस्या तब आती है जब हम साधना को, अध्यात्म को कर्मकांडीय क्रिया भर मान लेते हैं।

साधना के स्थूलपक्ष पर तो हमारा ध्यान होता है, माला, जप, हवन, पूजा आदि क्रियाएँ हम करते तो हैं, पर उन क्रियाओं के वास्तविक दर्शन, तत्त्वदर्शन की हम अक्सर उपेक्षा ही करते हैं। परिणामस्वरूप ये सारी क्रियाएँ बौद्धिक क्रियाएँ मात्र बनकर रह जाती हैं। इसी कारण हमारी भावनाएँ इनसे अछूती ही रह जाती हैं। हमारी भावनाएँ परिष्कृत नहीं हो पातीं और हमारी आत्मा आह्लादित नहीं हो पाती। हमें अपने अंतस् में आत्मा के रूप में विराजमान परमात्मा की अनुभूति नहीं हो पाती। उनका कृपाप्रसाद हमें नहीं मिल पाता। मिले भी तो कैसे? क्योंकि साधना में सफलता का सीधा अर्थ हम अक्सर यही मानते हैं कि हमारी भौतिक प्रगति और अधिक हुई या नहीं। हमारे धन, संपदा, यश, गौरव में वृद्धि हुई या नहीं।

वास्तव में ये सारी चीजें कोई आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं, बल्कि भौतिक उपलब्धियाँ ही हैं। भौतिक संपदा तो भौतिक पुरुषार्थ मात्र से कोई भी पा सकता है, पर आध्यात्मिक संपदा तो ऐसी संपदा है, जिसके समक्ष कुवेर की संपदा भी तुच्छ जान पड़ती है। यह संपदा आध्यात्मिक साधना से ही मिल पानी संभव है। इसे पाने का कोई शॉर्टकट मार्ग नहीं है।

जैसे कोई बीज जमीन में जाकर अपना संपूर्ण समर्पण कर देता है तभी वह बीज से विशाल वृक्ष बन पाता है, गगनचुंबी वृक्ष बनकर खड़ा हो पाता है। वैसे ही साधक को साधना की भूमि में उतरकर, साधना की गहराई में उतरकर अपनी वर्तमान मनोभूमि को मिटाना होता है, संपूर्ण समर्पण करना होता है तभी उसके अंदर एक नए मनुष्य का जन्म होता है, उसका आमूलचूल रूपांतरण होकर उसी के अंदर से एक नया देवमानव प्रकट हो पाता है। उसकी पूर्व की आदतें, मान्यताएँ, इच्छाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ, आदि सभी मर जाते हैं, मिट जाते हैं। तब वह स्वयं को सोऽहम्, शिवोऽहम्, सच्चिदानंदोऽहम् कहने लगता है। तब उसकी जीवन-दृष्टि बड़ी व्यापक हो जाती है। वह सबको स्वयं में और स्वयं को सबमें देखने लगता है। तब उसके हृदय में जो परम आनंद की अनुभूति होती है, उसे बताया ही नहीं जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि साधना सचमुच सच्ची हो तो साधना से सिद्धि अवश्य मिलती है। शास्त्रों में वर्णित साधना से सिद्धि के लक्षण साधक के जीवन में सचमुच अभिव्यक्त होने लगते हैं। अत: हमारी साधना सफल नहीं होने का बस एक ही कारण है और वह यह है कि हमने साधना के मर्म को समझा ही नहीं। हमने साधना के ज्ञान-विज्ञान का सम्मान ही नहीं किया। इसलिए हम मन को विकारों से मुक्त नहीं कर पाए। हमने चित्तशुद्धि व मन को निर्मल बनाने की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। हमने जीवन में संयम, सेवा, सदाचार आदि को कोई महत्त्व दिया ही नहीं।

हमने तो बस अपने आराध्य को, अपने गुरु को अपने भगवान को मनोकामनापूर्ति का एक यंत्र भर मान लिया और उन्हें मूर्तियों और मंदिरों तक ही सीमित समझते

रह गए। इसलिए भगवान को पुष्प, अक्षत, नैवेद्य आदि भेंट चढ़ाने भर को ही हम साधना मानते रहे। मंदिरों में जाकर भगवान के समक्ष रोते-गिड़गिड़ाते रहे। एक लंबा-चौड़ा माँगपत्र प्रस्तुत करते रहे और पूजन-सामग्री चढ़ाकर भगवान को अपनी मनोकामनापूर्ति हेतु बहलाने-फुसलाने व रिझाने में लगे रहे। मनोकामना नहीं पूरी होने पर धर्म, अध्यात्म को कोसते रहे, अपने आराध्य, गुरु व भगवान को कोसते रहे; पर हमने कभी इस ओर ध्यान ही नहीं दिया कि वास्तव में हमारे गुरु, हमारे आराध्य, हमारे भगवान हमसे क्या चाहते हैं? वे हमें क्या बनाना चाहते हैं। देवदुर्लभ मानव जीवन देकर तो भगवान ने हमें स्वत: ही सब कुछ दे दिया है।

आत्मा के रूप में परमपिता परमेश्वर हमारे अंतस् में स्वयं विराज रहे हैं। हमें तो जप, तप, योग की अग्नि में स्वयं को तपाकर बीज से वृक्ष बनना है, मानव से माधव बनना है, नर से नारायण बनना है। पर इस ओर हमने ध्यान ही कहाँ दिया? हम भूल गए कि वस्तुत: हमें तो अपने समस्त विकारों से मुक्त होना भर है। हमें तो साधना में रहकर अपनी इच्छाओं से, वासनाओं से मुक्त होना है। अपने चित्त को, मन को निर्मल, परिष्कृत व पावन बनाना है।

हमने भगवान का जलाभिषेक तो किया, पर क्या हमने अपने चित्त का जलाभिषेक किया? भगवान पर हमने खूब पुष्प चढ़ाए, पर क्या हमारे चरित्र में भी फूलों की महक आई? हमने भगवान के समक्ष खूब नैवेद्य व शहद चढ़ाए। यह अच्छी बात है, पर क्या हमारे व्यवहार में मधुरता आई? हमने भगवान के ऊपर खूब भस्मलेपन किए, पर क्या हम कभी यह विचार कर पाए कि हमारा शरीर भी एक दिन भस्मीभूत होने वाला है और हमें इस देवदुर्लभ तन में रहते हुए अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेना है।

हमने खूब यज्ञ किए, खूब आहुतियाँ दीं पर क्या अपने समय, श्रम, प्रतिभा व धन आदि की आहुतियाँ देकर इस विश्व-ब्रह्मांड के रूप में अभिव्यक्त परमेश्वर की सचमुच पूजा की। क्या पर-सेवा, परोपकार की प्रवृत्ति हममें जाग्रत हो सकी? जिस आराध्य को, भगवान को हम मंदिरों में निहारते हैं—उस भगवान को क्या हम दीन-दु:खियों में, अपनों में, परायों में, यत्र-तत्र, सर्वत्र भी निहार पाए? क्या उन सबमें हमें अपने आराध्य की छवि दिखने लगी? क्या दूसरों के दु:ख से हमारा मन द्रवित होने लगा? क्या उनकी सेवा को मन बेचैन होने लगा? क्या उन्हें देखकर आँखों में आँसू और हृदय में भाव-संवेदनाएँ उमड़ने-घुमड़ने लगे?

हमने स्तुति व आरती के माध्यम से भगवान के दिव्य गुणों को खूब गाया, पर क्या हम उन गुणों को अपने जीवन में भी उतार पाए? क्या हम कर्म करते समय यह याद रख पाए कि ईश्वर सर्वत्र है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिशाली है? वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी ईश्वर हमारे हर कर्म को देख रहा है और हमें अपने कर्मों का ही फल मिलने वाला है; क्योंकि ईश्वर न्यायकारी है। वह किसी के साथ पक्षपात नहीं कर सकता। इसलिए युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने साधकों के लिए एक 18सूत्रीय संविधान सृजित किया, जिसके प्रथम सूत्र में ही उन्होंने उपदेश दिया—"हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।"

साधना का अर्थ याचना या कामना नहीं, वरन ईश्वरीय अनुशासन को जीना है उस पर जीवनभर चलना है। जिस प्रकार एक गुरु को सभी प्रकार से अनुशासित शिष्य सबसे प्रिय होता है, उसी प्रकार भगवान शिव रामचरितमानस में कहते हैं—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई।
मम अनुसासन मानै जोई॥

अर्थात—भगवान शिव कहते हैं वही हमारा सेवक है, वही हमारे लिए अधिक प्रिय है; जो हमारे द्वारा बताए रास्ते पर चलता है, हमारा अनुशासन मानता है। भगवान राम भी रामचरितमानस में यही कहते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

अर्थात—जिसका मन निर्मल है, वह ही मुझे प्रिय है। मुझे कपटी, छली व्यक्ति प्रिय नहीं है। अत: अपने मनमंदिर में भगवान को बसाने के लिए व उनकी कृपा पाने के लिए मन का निर्मल होना आवश्यक है। ईश्वर के अनुशासन को मानना आवश्यक है। अपने अंतस् का आमूलचूल रूपांतरण आवश्यक है। सचमुच समस्त साधनाओं का, पूजापद्धतियों का सार भी यही है। यदि हम ऐसा कर सके तो हमारी साधना सचमुच ही फलदायक है।

❑

चेतना की शिखर यात्रा –211

अवतार-प्रक्रिया का रहस्य

विगत अंक में आपने पढ़ा कि पूज्यवर द्वारा प्रदत्त महिला जाग्रति अभियान के अंतर्गत महिला प्रौढ़शालाओं में अध्ययन हेतु महिलाओं को तैयार करने में स्वयंसेवी महिलाओं को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। संपर्क में आती महिलाओं में से अधिकतम ने स्वयं ही निरक्षरता भरे जीवनयापन के ढर्रे से छुटकारा पाने में आपत्ति जताई तो वहीं जो इस संबंध में रुचि दिखातीं, उनके आगे पारिवारिक विरोध अपने-अपने तर्क लिए प्रस्तुत होता; किंतु इस सबके बीच भी क्षेत्र की कर्मठ एवं निष्ठावान स्वयंसेवी महिलाओं ने मध्यम मार्ग निकालकर प्रौढ़शालाओं की यथासंभव छोटी, किंतु क्रांतिकारी शुरुआत की।

समय के उसी प्रवाह में जब पूज्यवर पूर्व में ही महिलाओं को अग्रगामी बनाने के प्रयास में महिला जाग्रति अभियान द्वारा मिशन की विभिन्न शाखाओं के माध्यम से उन्हें उपयुक्त अवसर प्रदान कर रहे थे तो वहीं समूचा विश्व, संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा पूज्यवर की उन्हीं सूक्ष्मप्रेरणाओं से तरंगित हो कुछ समय पश्चात अपनी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से महिलाओं को विशेषाधिकारों से लाभान्वित कराने के उद्देश्य से अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस, महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों से संबंधित विभिन्न महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों को पारित कर रहा था। महिला शिविर के लिए शांतिकुंज आईं महिलाओं के बीच चर्चा का यही ज्वलंत विषय बना हुआ था।

आंध्र प्रदेश में नलगोड़ा के पास एक गाँव में रह रही दामिनी बिना अनुमति लिए ही अचानक शांतिकुंज आ गई थी। उसने गायत्री परिवार या गुरुदेव के बारे में तीन-चार महीने पहले तक सुना भी नहीं था। तिरुपति के प्रसिद्ध दैवज्ञ पंडित वेंकट शास्त्री ने उससे कहा था कि तुम्हारी दारुण समस्या का हल उत्तर दिशा में जाने पर ही होगा। वहाँ का कोई ऋषि ही मदद कर सकता है। दामिनी की समस्या वाकई दारुण थी। उसका पति अनिल नायडू ट्रेवल एजेन्सी में काम करता था। अच्छा वेतन मिल रहा था, खेती-बारी थी। आठवें दशक में दो-ढाई लाख रुपये सालाना आमदनी हो जाती थी। दामिनी और अनिल की शादी हुए पाँच साल हो गए थे। परिवार में दो बच्चे भी आ गए थे। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। इस बीच अनिल ने जमीन-जायदाद का व्यवसाय शुरू किया। इस क्षेत्र का उसे कोई अनुभव नहीं था। एक भागीदार चुना। दोनों मिलकर काम कर रहे थे।

कुछ दिन बाद पता नहीं क्या हुआ कि अनिल दामिनी से कुछ खिंचा-खिंचा रहने लगा। व्यापार-व्यवसाय ही नहीं, घर-परिवार के बारे में भी दामिनी से कोई बात नहीं करता। और एक दिन ऐसा हुआ कि अनिल सुबह घर से निकला और वापस नहीं आया। शाम और देर रात तक तो दामिनी ने इंतजार किया । अगली सुबह भी वापस नहीं आया तो चिंता हुई। संबंधियों और परिचितों से पूछा-ताछा। यहाँ-वहाँ तलाशा कोई संतोषजनक जवाब नहीं मिला। फिर नाते-रिश्तेदारों और जान-पहचान वालों से पूछा। वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। पार्टनर ने भी अनिल की खोज में मदद की और दामिनी के दु:ख में हिस्सा बँटाया, लेकिन सब बेकार। अनिल की कोई खोज-खबर नहीं मिली। दिन-हफ्ते और महीने बीत गए। अब दूसरा साल चल रहा था। दामिनी पति के बारे में सूचना मिलने का इंतजार करते हुए उसे ढूँढ़ने के लिए अपनी तरह से जतन करती। तीर्थ, मंदिर, सिद्धस्थल और न जाने कहाँ-कहाँ यात्रा कर आई।

पंडित वेंकट शास्त्री का बड़ा नाम सुना था। दामिनी ने उनसे अपना दु:ख बताया। जन्मपत्री देखे बिना ही उन्होंने कह दिया कि उत्तर दिशा में जाओ। वहाँ तुम्हारी समस्या का हल हो जाएगा। शास्त्री जी ने यह नहीं बताया कि उत्तर दिशा में कहाँ जाना है। दामिनी ने पूछा तो सिर्फ इतना ही कहा कि मैंने यह बात ज्योतिर्विद्या के आधार पर नहीं बताई है। तुम्हारे यहाँ आते ही लगा कि जैसे तुम मेरी पुत्री हो और बहुत कष्ट में हो। फिर अनायास ही जो प्रेरणा हुई, उसे मैंने तुम्हें कह दिया। मुझे सिर्फ यही लग रहा है कि जिस महापुरुष के पास तुम्हारे कष्ट का निवारण होना है, वह किसी प्राचीन विद्या का उन्मेष करने में लगा हुआ है।

पंडित जी के इतना बताते ही दामिनी ने तत्क्षण निश्चित कर लिया कि उन महापुरुष के सान्निध्य में जाना है। इस निश्चय के बाद दो-तीन दिन में ही गंतव्य स्थान का पता भी चल गया। और जाने की व्यवस्था भी हो गई। दामिनी खुद हैरान थी कि कैसे यह सब हो रहा है। जिस ढंग से साधन जुट रहे थे, उससे दामिनी के मन में विश्वास जन्म लेता और बढ़ता जा रहा था कि उसकी समस्या हल हो जाएगी। उजड़ा हुआ संसार फिर बस जाएगा, लेकिन शांतिकुंज पहुँचकर गुरुदेव से मिली तो निराशा ही हुई। मुश्किल से दो मिनट मुलाकात हुई होगी। दामिनी के हिसाब से गुरुदेव ने मामूली ढंग से ही कुशलक्षेम पूछा था। अपनी व्यथा के बारे में बताना शुरू ही किया था कि गुरुदेव ने कहा—''चिंता न कर बेटी! तुम्हारा पति आजकल में ही वापस आ जाएगा।''

दामिनी ने कहना चाहा था कि यह कैसे होगा गुरुदेव? मैं तो यहाँ हूँ। अभी दो दिन बाकी हैं। मेरे पति वापस कैसे आ जाएँगे। उसने कहने के लिए मुँह खोला ही था कि गुरुदेव ने कहा—''मन में कोई दुविधा मत पाल। तुम लोग फिर पहले की तरह सुखी रहोगे और तरक्की करोगे। तुम शिविर में आई हो न। शाम को गंगा किनारे जरूर हो आना। मन को शांति मिलेगी।''

दामिनी फिर दुविधा में फँसी। गुरुदेव में उसे कोई विलक्षणता नहीं दिखाई दे रही थी। पंडित जी से सुनकर सिद्ध महापुरुष का जो चित्र मन में बना था, वह गुरुदेव के व्यक्तित्त्व से कतई मेल नहीं खाता था। गुरुदेव उसे महापुरुष, ऋषि या सिद्ध के स्थान पर अपने परिवार के बड़े बुजुर्ग ज्यादा लग रहे थे। दामिनी को लग रहा था कि वे कोई सहायता करने के बजाय सांत्वना दे रहे थे। गुरुदेव ने जब शाम को गंगा किनारे हो आने के लिए कहा तब वह और ज्यादा क्षुब्ध हो गई। मन में विचार आया कि शायद गलत जगह आ गई है।

दिन का बाकी समय अपने कक्ष में ही जप-तप करते हुए बिताने के बाद वह शाम को गंगा किनारे घूमने गई। वहाँ उसके मन में क्षोभ और निराशा के भाव ही घनीभूत हो रहे थे। गंगा के जिस घाट पर वह कुछ देर के लिए बैठी थी, वहाँ और लोग भी आ-जा रहे थे। उनमें से कुछ किनारे बैठकर जप, ध्यान और स्तोत्र पाठ कर रहे थे। दामिनी किनारे बैठी गंगा की धारा को देख रही थी। उस समय भी नलगोड़ा में परिवार के साथ बिताए क्षण और उसके बाद पति के चले जाने से अब तक की कई स्मृतियाँ मन में आ-जा रही थीं। वह बैठी हुई अपने अतीत के बारे में सोच ही रही थी कि कुछ क्षण पहले ही घाट पर आकर बैठे दो युवा साधुओं की आपस में चल रही बातचीत सुनाई दी। उनकी चर्चा में कुछ वाक्य ऐसे आ गए थे, जिससे दामिनी के कान खड़े हो गए और वह गौर से सुनने लगी।

दोनों साधु आश्रम में आए किसी व्यक्ति के बारे में बात कर रहे थे, जिसे अगले रविवार को संन्यास की दीक्षा दी जानी थी। वह व्यक्ति कुछ सप्ताह पहले यहाँ आया था और जैसा कि सुनाई पड़ा आंध्र प्रदेश के किसी शहर का था। वह व्यापार, व्यवसाय में लगा हुआ था और वैराग्य होने के कारण यहाँ आ गया। आंध्र प्रदेश, वहाँ के शहर और व्यापार, व्यवसाय की अस्पष्ट चर्चा से दामिनी को लगा कि कहीं वह व्यक्ति अनिल ही तो नहीं है। मन कुछ देर तक इस संभावना में अटका रहा और फिर उसने सुने हुए वाक्यांशों को मन से झटक दिया। कुछ देर और वहाँ बैठकर, गंगा की धारा में हाथ-मुँह धोकर अर्घ-प्रणाम के बाद दामिनी वहाँ से उठकर आ गई।

रात में दामिनी के मन में गुरुदेव से कल की भेंट, उनके आश्वासन और शाम को गंगातट पर सुनी साधुओं की बातें आती रहीं। यह सब सोचते हुए कब नींद आ गई कुछ पता ही नहीं चला। लेकिन अगले दिन सुबह जो कुछ हुआ, वह दामिनी की कल्पना से परे था। जप के बाद यज्ञशाला में हवन कर वह गुरुदेव-माताजी के दर्शन करने ऊपर गई। वहाँ से नीचे उतरी तो सीढ़ियों के पास ही उसे अनिल खड़ा दिखाई दिया। उसे देखते ही हृदय धक से रह गया। इच्छा

हुई कि उसे कसकर पकड़ ले और जी भरकर रोए। लेकिन दामिनी ने अपने आप को सँभाला और वह अनिल की ओर देखने लगी, अनिल भी उसे देख रहा था। मन-ही-मन वह कह उठी, कहाँ थे इतने दिनों से निष्ठुर। इस बीच हम लोगों की तनिक भी याद नहीं आई।

सुध लेने का आदेश

मुलाकात इतनी शांत और संयत थी कि पास से गुजर रहे किसी व्यक्ति को आभास तक नहीं हो रहा था। अनिल ने कहा कि याद तो आती थी दामिनी, पर मैं इस कदर हार और टूट गया था कि लौट नहीं पा रहा था। दामिनी ने लाड़ से डाँटते हुए पूछा कि अब कैसे हिम्मत हुई तो अनिल ने एक विचित्र अनुभव सुनाया। उसने बताया कि कल रातभर नींद नहीं आई। घर-परिवार छोड़ने के बाद वैसे भी नींद नहीं आती थी। लेकिन कल तो गजब ही हो गया। जैसे ही आँख लगती एक अवधूत संन्यासी दिखाई देते। जटा-जूटधारी यह संन्यासी अनिल को झिंझोड़कर उठा देते और कहते कि तुम्हारी पत्नी तुम्हें खोजती हुई यहाँ तक आई है और अब मेरे संरक्षण में है। ज्यादा कमाने और जल्दी से मालदार होने के चक्कर में जो खो दिया है, उसे भूल जाओ। अब उसकी सुध लो, जो तुम्हें आठों पहर याद करती है।

रातभर में चार बार इस तरह की प्रतीति हुई। सुबह हुई तो पैर अपने आप इस दिशा में चल पड़े। पता नहीं था कि कहाँ जाना है। लेकिन यहाँ आते तक एक पल को भी नहीं लगा कि कहीं कुछ पूछने-तलाशने की जरूरत है। जैसे कोई हाथ पकड़कर यहाँ ला रहा हो या आगे-आगे रास्ता बताते हुए चल रहा हो। इस तरह यहाँ पहुँचा और कार्यालय में आकर तुम्हारे बारे में पूछा, पता किया। यह सब उन महात्मा का आदेश पालन करते हुए किया। दामिनी वृत्तांत सुन तो रही थी, लेकिन उसके चित्त और भावजगत में गुरुदेव के कल कहे हुए शब्द गूँज रहे थे। वह अपने पति को विस्मित और विस्फारित नेत्रों से देख रही थी, लेकिन चेतना में गुरुदेव और उनके अनुग्रह से अभिभूत थी।

(क्रमशः)

आदिगुरु शंकराचार्य से उनके शिष्य ने पूछा—"गुरुवर! संसार यदि मिथ्या है तो संसार के बंधनों से मुक्त होना मनुष्य के लिए इतना कठिन क्यों है?" शंकराचार्य के हाथ में कमंडलु था, वे बोले—"अभी मेरे को इस कमंडलु ने पकड़ा हुआ है। जैसे ही यह मुझे छोड़ देगा, मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दूँगा।" शिष्य चकित हुआ, पूछने लगा—"भगवन्! क्यों विनोद करते हैं। कमंडलु तो आपके हाथ की पकड़ में है। आप जब चाहें, तब उसे छोड़ सकते हैं।"

शंकराचार्य बोले—"वत्स! मेरा कमंडलु से बंधन, मन का भ्रम मात्र है। मैं इससे तब तक बँधा हूँ, जब तक मैं स्वयं को बँधा हुआ अनुभव करूँ। वह भ्रम टूटते ही स्वतंत्रता की राहें स्वतः खुल पड़ती हैं। उसी प्रकार जब तक मनुष्य संसार को सत्य मानता है, वह उसके बंधनों को भी सत्य मानकर स्वयं को बँधा महसूस करता है।"

वे आगे बोले—"जिस समय उसका विवेक जागता है और उसे संसार के मिथ्या होने का भान होता है, उसी समय संसार के बंधन भी उसके सामने मिथ्या सिद्ध होकर क्षणभर में खुल जाते हैं और वैराग्य का सवेरा माया के अंधकार को सदा-सदा के लिए दूर कर देता है।"

पर्यटनस्थलों को सुधारते ये युवा

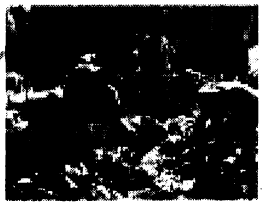

प्रकृति के सान्निध्य व सामीप्य को प्राप्त करने के लिए, प्राकृतिक सुंदर दृश्यों का आनंद लेने के लिए, शांति व सुकून पाने के लिए लोग पर्यटनस्थलों, तीर्थक्षेत्रों, पहाड़ों, नदियों व समुद्रीतटों पर जाना पसंद करते हैं, लेकिन यदि वहाँ जाने वाले लोग इन स्थलों की स्वच्छता का ध्यान नहीं रखते, वहाँ पर कूड़ा-कचरा फैलाकर जाते हैं, तो ऐसे स्थलों में धीरे-धीरे कचरा जमा होने लगता है और फिर इन स्थलों में जाने, ठहरने, घूमने का न तो मन करता और न ही ये स्थल हमें वह शांति व सुकून दे पाते, जिसके लिए हम वहाँ जाते हैं।

उदाहरण के लिए समुद्र की उठती-गिरती लहरों को निहारना, रेत के छोटे-छोटे टीले बनाना, सीपियाँ चुनना, वहाँ पर दौड़ना-भागना, अपने बचपन की यादों को ताजा करना सभी को पसंद है, लेकिन यदि समुद्री तटों की रेत पर कचरा और गंदगी इस कदर फैले हों कि यह जगह नंगे पाँव चलने लायक भी न रहे, तो फिर घूमने का मजा ही किरकिरा हो जाता है। लेकिन आज के हमारे कुछ युवा घुमक्कड़ी ऐसे हैं, जो न सिर्फ यहाँ घूमने के लिए आ रहे हैं, बल्कि लोगों द्वारा फैलाए कचरे से पर्यटनस्थलों को मुक्त कर अपने जिम्मेदार नागरिक होने की भूमिका भी निभा रहे हैं।

इसमें सबसे पहला उदाहरण है—तमिलनाडु के मधुसूदन का। पिता के भारतीय सेना में होने के कारण बचपन में ही इन्हें देशभर में घूमने का मौका मिला। दिल्ली यूनिवर्सिटी के हिंदू कॉलेज से फिलॉसफी ऑनर्स करने के दौरान जब पिता ने इन्हें इनफील्ड मोटरसाइकिल भेंट की, तो फिर इनके घूमने का सिलसिला शुरू हुआ। मात्र तीन साल में ही इन्होंने 26000 किलोमीटर की यात्रा की। इनका मानना है कि अगर हमें अपने पर्यटनस्थलों को बचाना है तो जागरूकता के साथ-साथ स्थानीय लोगों को भी एकजुट करना होगा।

मधुसूदन का कहना है कि एक समय था जब खीरगंगा एक पवित्र स्थल हुआ करता था। शराब, मांसाहार आदि वहाँ नहीं मिलते थे, लेकिन आज वहाँ ये सभी चीजें देखने को मिल जाती हैं। आर्थिक तरक्की के लिए स्थानीय लोग ही इन्हें पर्यटकों को उपलब्ध कराते हैं और यह भूल जाते हैं कि पैसा ही सब कुछ नहीं होता, जिस दिन लोगों को यह समझ में आ जाएगा, उस दिन हमारे पहाड़ों में बसे तीर्थस्थलों को प्रदूषण से निश्चित तौर पर बचाया जा सकेगा।

मधुसूदन ने देखा है कि कैसे कुछ लोग पहाड़ों को कचरे से मुक्त करने में जुटे हैं। इनका कहना है कि पर्यावरण बचाओ के नारे तो अनेक लोग लगाते हैं, खास मौकों पर रस्म अदायगी भी करते हैं, लेकिन कुछ ही लोग ऐसे होते हैं, जो बिना दिखावे के अपनी जिम्मेदारी निभाते रहते हैं। इसलिए लोगों के साथ किसी मिशन में लग जाना मन को संतोष देता है। अभी ये हिमालय के छोटे से कस्बे में गाइड के रूप में कार्य करने के अलावा स्वयंसेवक का भी कार्य करते हैं।

यात्रा के दौरान जब मधुसूदन के पास पैसे नहीं होते, तो ये या तो किसी ढाबे या रेस्टोरेन्ट के किचन में काम कर लेते थे या कभी टूरिस्ट गाइड बन जाते थे। इनका कहना है कि पहले शांति व सुकून की तलाश में काफी संख्या में अमेरिकी और यूरोपीय पर्यटक या ट्रेकर्स आते थे, लेकिन अब उनकी संख्या घट गई है; क्योंकि पहाड़ों में उन्हें प्रकृति के नजारों से अधिक लोगों की भीड़ और गंदगी मिलती है। इसलिए घुमक्कड़ों से उनका कहना है कि बेशक वे ट्रैकिंग के लिए आएँ या प्रकृति के साथ समय बिताने के लिए आएँ, लेकिन अपनी जिम्मेदारियाँ न भूलें। वे स्थानीय लोगों से मेल-मिलाप रखें और अपने कचरे का प्रबंधन खुद करें।

दूसरा उदाहरण हाल ही में लद्दाख की यात्रा से लौटी दिल्ली की नेहा लांबा का है, जिन्होंने वहाँ पर एक बहुत अच्छी पहल होते देखी। लद्दाख में एक ऐसा समूह था, जो लोगों को पानी की बोतल खरीदने के बजाय उसे रिफिल करने के लिए प्रोत्साहित कर रहा था, यानी लद्दाख जैसे स्थलों में भी प्लास्टिक के कचरे से मुक्ति के लिए अब प्रयास शुरू हो गए हैं।

नेहा के अनुसार—इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारतीय पर्यटकों की संख्या बढ़ी है, लेकिन इसमें भी दो तरह के लोग हैं। एक पर्यटक वो हैं, जो सिर्फ घूमने, मौज-मस्ती के लिए यात्राएँ करते हैं और दूसरे वे पर्यटक हैं, जिन्हें प्रकृति और पर्यावरण से प्रेम होता है। ये नए स्थानों को ढूँढ़ना, धरोहरों को देखना व जानना चाहते हैं, इसलिए अधिक सजग व संवेदनशील भी होते हैं।

तीसरा उदाहरण—विकास का है, जो मनाली के पास खूबसूरत कसबे हाम्टा में 'इकोफ्रेंडली कैंप' चलाते हैं और एडवेंचर टूर ऑपरेटर का भी काम करते हैं, इनका कहना है कि आज काफी संख्या में लोग पहाड़ों में घूमने आ रहे हैं; लेकिन इन्हें पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का थोड़ा भी एहसास नहीं है। कई लोग तो ट्रैकिंग के दौरान पहाड़ों में उगने वाले जंगली पौधों (हिमालयन हेल्थलाइन फ्लावर्स) को भी बिना जाने रौंद डालते हैं। हालात इतने हास्यास्पद हो गए हैं कि अगर कोई इनसे रास्ते के बारे में पूछता है तो उसे यह सलाह दी जाती है कि जिस रास्ते पर कचरा न मिले, समझ जाना चाहिए कि वह गलत रास्ता है यानी आप रास्ता भटक चुके हैं।

विकास के अनुसार—जो इलाका किसी जमाने में ट्रैकिंग के लिए शांतिप्रिय सैलानियों के बीच काफी लोकप्रिय था, अब वह उनसे वीरान हो गया है और अब उनकी जगह ऐसे पर्यटकों की भीड़ ने ले ली है, जो शांति के बजाय शोर-शराबे के साथ पार्टी करना पसंद करते हैं। यहाँ कचरे को यों ही फेंक दिया जाता है या जला दिया जाता है। अगर कोई पदार्थ ज्वलनशील नहीं होता, तो वह यों ही पड़ा रहता है। अत: इकोफ्रेंडली टूरिज्म को बढ़ावा देकर और ट्रैकिंग मार्ग पर भीड़ को नियंत्रित कर स्थिति को बिगड़ने से रोका जा सकता है।

आज हमारे युवा सैलानी घुमक्कड़ी के साथ-साथ स्वच्छता व सफाई के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को समझ रहे हैं—यह कहना है 'दि हीलिंग हिमालयाज फाउंडेशन' के संस्थापक प्रदीप सांगवान का। इनके अनुसार—जब इन्होंने हिमालय प्रदेश में पहाड़ों की सफाई का अभियान शुरू किया था, तो साथ में इनके स्वयंसेवक काम करते थे, लेकिन आज जो लोग ट्रैकिंग आदि के लिए आते हैं, वे स्वत: ही इन लोगों के साथ जुड़कर काम करने लगते हैं। अब युवा सैलानी पहले से यह मन बनाकर आते हैं कि उन्हें उस जगह में घूमने के साथ ही पहाड़ों की सफाई के अभियान में सहयोग भी देना है। जो शारीरिक रूप से सक्षम होते हैं, वे खुले दिल एवं दिमाग से इस कार्य में अपना साथ देते हैं।

प्रदीप सांगवान के अनुसार—यात्रा के दौरान हर ट्रैक रूट पर अलग प्रकार का कचरा मिलता है। जिन रास्तों पर वाहन जा सकते हैं, वहाँ लोग अपनी गाड़ियों में शराब आदि की बोतलें लेकर आते हैं और पार्टी करने के बाद उन्हें वहीं छोड़कर चले जाते हैं, लेकिन जहाँ गाड़ियाँ नहीं पहुँच पातीं, वहाँ शीशे या काँच की जगह प्लास्टिक कचरा अधिक मिलता है। पर्यटन-क्षेत्रों में छोटे-छोटे सफाई अभियान तो पहले से चल रहे थे, लेकिन वे सुर्खियों में नहीं आते थे, लेकिन अब लोगों ने ऐसे कार्यों को गंभीरता से लेना शुरू किया है। अब चूँकि यात्रा पर जाने वाले लोगों में पहाड़ों की सफाई करने वालों की संख्या बढ़ रही है, इसलिए लोग सिर्फ अपने आनंद के लिए ही यात्रा नहीं कर रहे, बल्कि पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को भी निभा रहे हैं। इसके लिए ट्रैकिंग पर जाते समय लोग अपने साथ एक बैग रखते हैं और मार्ग में मिलने वाले कचरे को समेटते हुए नीचे लौटते हैं।

पर्यटन-क्षेत्रों में ज़हाँ स्थानीय लोग पानी की प्लास्टिक की बोतलें, चिप्स व चॉकलेट के पैकेट, छाते, रेनकोट, प्रसाद की सामग्री वाले पैकेट्स आदि बेचते हैं, वे भी अब धीरे-धीरे लोगों को इधर-उधर गंदगी न फैलाने के लिए सचेत करने लगे हैं। कई जगहों पर तो डिस्पोजेबल प्लेट्स का इस्तेमाल बंद हो गया है। लोग अपने घरों से ही प्लेट लेकर आ रहे हैं साथ ही ट्रैकर्स—कपड़े के बैग्स और रिफिल करने वाली बोतल लेकर भी आ रहे हैं। यह बदलाव धीरे-धीरे ही सही, लेकिन अब देखने को मिल रहा है।

'मैराथन रनर एवं प्लॉगर्स ऑफ इंडिया फाउंडेशन' के संस्थापक रिपुदमन का कहना है कि तीन साल पहले जब उन्होंने दौड़ना शुरू किया तो हर तरफ कूड़ा-कचरा फैला देखकर यह फैसला किया कि किसी से शिकायत या दोषारोपण करने के बजाय इस विषय में खुद ही वे कुछ करेंगे। इन्होंने 'मेरा शहर—मेरी जिम्मेदारी' नाम से एक अभियान चलाया। शुरुआत में एक दोस्त के साथ मिलकर इन्होंने तीन-चार किलोमीटर की पूरी सड़क की सफाई कर डाली। फिर सोचा कि जब दो लोग दो-तीन घंटे में इतना

कर सकते हैं तो अगर यह आंदोलन बन जाए, तो कितना कुछ हमारे आस-पास का परिदृश्य बदला जा सकता है। फिर रिपुदमन ने कचरामुक्त भारत के सपने को साकार करने का बीड़ा उठाया। अब तक ये 21 शहरों में 300 से अधिक अभियान चला चुके हैं। फिलहाल 50 शहरों में 1000 किलोमीटर के लगभग क्षेत्र की सफाई का अभियान भी इन्होंने शुरू किया है। इसके द्वारा वे लोगों को जागरूक करते हैं कि कैसे वे कम-से-कम कचरा निकालें और ट्रैकिंग की यात्रा के दौरान कचरे की सफाई करें।

लद्दाख के ऊँचे स्थानों पर ट्रैकिंग करने के दौरान वहाँ कचरा देखकर रिपुदमन को बहुत अफसोस हुआ कि कैसे लोग दुर्गम प्राकृतिक स्थलों को भी गंदा करने में संकोच नहीं करते। इसलिए इन्होंने वहाँ भी प्लॉगिंग की, ताकि लोग अपने कदमों के निशान छोड़ें न कि कार्बन फुटप्रिंट। वर्तमान में पर्यटकों की भीड़ बढ़ने से पहाड़ों व समुद्रीतटों पर गंदगी फैल रही है। हालाँकि हमारे देश में ऐसे युवा सैलानियों की संख्या बढ़ रही है, जो अपने स्तर पर सफाई का जिम्मा उठाने के साथ ही पर्यटकों को जागरूक भी करते हैं कि वे घूमते समय किन बातों का ख्याल रखें। शराब आदि से कैसे परहेज करें? ट्रैकिंग के बाद अपना कचरा कैसे वापस सँभालकर लाएँ? इसके बावजूद जब तक पर्यटन के लिए जाने वाले लोग सचेत नहीं होंगे, जागरूक नहीं होंगे, कचरा यों ही फैलता रहेगा। इसलिए जरूरी है कि पर्यटन हेतु जाने वाले लोग प्रकृति व पर्यावरण की स्वच्छता व सफाई के प्रति भी जागरूक हों और अपना दायित्व निभाएँ। ❑

एक संत धुंधुकारी की कथा के माध्यम से मानव के अध:पतन का प्रसंग समझाते हुए एक सत्संग में कह रहे थे—''धुंधुकारी वेश्याओं के चक्कर में फँस गया था। उनको प्रसन्न करने के लिए चोरी-अनाचार भी करने लगा। जब वह वेश्याओं को प्रसन्न करने में समर्थ न हो सका तो वेश्याओं ने उसके मुख में अंगार भरकर उसे मार डाला। वह प्रेतयोनि में गया। उसके भाई गोकर्ण ने उसका गया श्राद्ध किया, तब भी मुक्ति न मिली। आलंकारिक रूप से विवेचन किया जाए तो धुंधुकारी है—'मनुष्य का संकीर्ण स्वार्थपरक स्वभाव।' वह कोई मर्यादा-अनुशासन नहीं मानता। मनमानी करने के लिए अंधाधुंध कुछ भी करता है। पाँच वेश्याओं के वह वशीभूत है। पाँच वेश्याएँ हैं—'शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की पाँच तन्मात्राएँ।' इन्हें तुष्ट करने के लिए वह अपने पिता आत्मदेव की भी नहीं सुनता। उनसे छल करता है। उसकी माँ धुंधुली—स्वार्थबुद्धि उसका समर्थन करके उसके हौंसले बढ़ा देती है।

''धुंधुकारी कालांतर में माता-पिता पर हावी हो जाता है। स्वार्थभाव दीवाना हो जाता है, तो न आत्मचेतना की सुनता है और न बुद्धि की। यही स्वार्थ जीव माता-पिता आत्मचेतना (आत्मदेव) और धुंधुली बुद्धि की उपेक्षा करके चोरी-धोखेबाजी करके भी वेश्याओं को तुष्ट करता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के सुख के लिए अनैतिकताओं पर भी उतर आता है। जब उन्हें तुष्ट नहीं कर पाता तो वे वेश्याएँ उसके मुख में अंगार भर देती हैं। धुंधुकारी जैसे स्वार्थी जीव का ऐसा ही दु:खद अंत होता है। हीन प्रवृत्तियाँ जब भड़क उठती हैं, तुष्ट नहीं हो पातीं तो जीव को ऐसी ही भीषण पीड़ा होती है। जो समय पर चेत जाए, सद्बुद्धि पा जाए; वही इस कष्ट से बच पाता है।''

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 132

डायरी लेखन का किशोरियों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

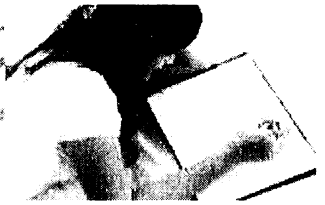

किशोरावस्था मनुष्य जीवन की सबसे संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में शारीरिक-मानसिक और भावनात्मक परिवर्तनों के साथ-साथ नैतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से भी किशोरों को संघर्ष करना पड़ता है। ऐसे में उन्हें कई तरह की समस्याओं एवं चुनौतियों से लड़ना होता है और उसी के अनुसार सभी स्तरों पर उचित समायोजन का विकास करना होता है।

यदि किशोरों को सही समय पर उचित प्रेरणा, मार्गदर्शन, सहयोग, वातावरण आदि उपलब्ध न हों तो वे स्वयं के साथ घटने वाले स्वाभाविक और प्राकृतिक परिवर्तनों से समायोजन करने में सफल नहीं हो पाते हैं फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व-विकास में अनेक तरह की विसंगतियाँ पैदा हो जाती हैं।

किशोरों के समक्ष उत्पन्न समस्याएँ और उनके समाधान की दिशा में जानकारी प्रदान करने तथा सार्थक समाधान के उपायों को खोजने की दृष्टि से देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। यह शोधकार्य किशोरावस्था की समस्याओं से परिचय कराने के साथ-साथ विशेष रूप से भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना के आधार पर किशोरियों की समस्याओं, चुनौतियों एवं उनके समाधान पर केंद्रित है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में किशोरियों के लिए किशोरावस्था की समस्याओं से निपटने के लिए न तो उन्हें किसी प्रकार का कोई पूर्व अनुभव होता है न ही कोई प्रशिक्षण प्राप्त होता है और न ही कोई मनोवैज्ञानिक सहायता उपलब्ध होती है; जिससे उनके व्यक्तित्व में विभिन्न प्रकार की समस्याओं के बढ़ने की संभावना और अधिक हो जाती है।

इन संभावित समस्याओं को रोकने तथा मौजूदा समस्याओं के कारणों का पता लगाने के लिए विभिन्न स्तरों पर मनोवैज्ञानिक शोध-अनुसंधान किए जाते हैं, ताकि किशोरियों के किशोरावस्था के विकास क्रम को सहज एवं संतुलित बनाया जा सके। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न प्रस्तुत शोध में पूर्व में हुए शोध अनुसंधान के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए एक नई और सकारात्मक दृष्टि से सार्थक समाधान की दिशा में नूतन प्रयास किया गया है।

यह शोध अध्ययन वर्ष—2018 में मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत शोधार्थी गुंजन शर्मा द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ० दीपक सिंह के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस अध्ययन का विषय है—**'डायरी लेखन, स्वाध्याय तथा परामर्श का किशोरियों के मानसिक स्वास्थ्य, संवेगात्मक बुद्धिमत्ता तथा स्व-प्रभावकारिता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।'**

शोधार्थी ने अपने अध्ययन के लिए उत्तर प्रदेश के जिला मुजफ्फरनगर के 'श्रीराम ग्रुप ऑफ कॉलेज' के विभिन्न विषय वर्गों में अध्ययन करने वाली प्रथम वर्ष की 400 स्नातक किशोरियों का आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयन किया। इनमें से 350 को प्रयोगात्मक तथा 50 को नियंत्रित समूह में रखा गया। प्रयोगात्मक समूह को सात उपसमूहों में विभाजित किया गया। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित किशोरियों का शोध उपकरण द्वारा परीक्षण किया गया।

परीक्षण के लिए जिन उपकरणों का उपयोग किया गया, वे हैं—(1) मैथिस जैरुसलेम तथा रॉफ श्वारजर द्वारा निर्मित एवं सोनाली सूद (2010) द्वारा हिंदी अनुवादित 'स्व- प्रभावकारिता मापनी।' (2) अरुण कुमार सिंह एवं अल्पना सेन गुप्ता (2000) द्वारा निर्मित 'मानसिक स्वास्थ्य बैटरी'। (3) डॉ० शीतला प्रसाद (2009) द्वारा निर्मित 'संवेगात्मक बुद्धिमत्ता मापनी।'

प्रारंभिक परीक्षण के उपरांत प्रयोगात्मक समूह के विभिन्न उपसमूहों को तीन माह की समय अवधि तक डायरी लेखन, स्वाध्याय एवं परामर्श चिकित्सा कराई गई। डायरी लेखन 50 छात्राओं को सप्ताह में 5 दिन 30 मिनट तक, स्वाध्याय 50 छात्राओं को सप्ताह में 5 दिन 30 मिनट तक एवं परामर्श 50 छात्राओं को सप्ताह में एक बार 30 मिनट तक। इसी तरह

शेष ग्रुपों में भी डायरी लेखन, स्वाध्याय और परामर्श का अभ्यास कराया गया। द्वितीय परीक्षण 45 दिन बाद एवं अंतिम तीन माह की अवधि पूर्ण होने पर किया गया।

अध्ययन से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में यह पाया गया कि डायरी लेखन, स्वाध्याय और परामर्श का एकाकी एवं सामूहिक रूप से अभ्यास करने से किशोरियों के मानसिक स्वास्थ्य, संवेगात्मक बुद्धिमता और स्व-प्रभावकारिता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शोध में प्रयोग की गई उक्त तीनों विधियों का स्वतंत्र रूप से और सम्मिलित रूप से अभ्यास किशोरियों के व्यक्तित्व पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभाव को दरसाते हैं।

अत: इस शोध परिणाम में यह स्पष्ट है कि डायरी लेखन, स्वाध्याय और परामर्श की विधियाँ किशोरावस्था की समस्याओं के समाधान में उपयुक्त उपचार का साधन एवं व्यक्तित्व के समायोजन स्तर व संतुलन में महत्त्वपूर्ण उपायों के रूप में अपनाई जा सकती हैं। इन तीनों प्रक्रियाओं के स्वतंत्र एवं सम्मिलित रूप से अभ्यास एवं प्रयोग अनेक सकारात्मक विशेषताओं से युक्त एवं व्यक्तित्व विकास में अत्यंत लाभकारी हैं।

इस अध्ययन में डायरी लेखन को व्यक्तित्व चिकित्सा की एक महत्त्वपूर्ण उपचार-विधि के रूप में प्रयोग किया गया है। चिकित्सकीय संदर्भ में लेखन-विधि को व्यक्तिगत अनुभवों, विचारों एवं संवेदनाओं को लिखकर स्वतंत्र अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में जाना जाता है। डायरी लेखन के माध्यम से व्यक्ति स्वतंत्र रूप से किसी अन्य व्यक्ति या विषयों के प्रति अपनी सोच, अनुभवों आदि की अभिव्यक्ति करता है।

इसी कारण से इस लेखन-विधि को आत्मसहयोगी विधि भी कहते हैं। डायरी लेखन के द्वारा व्यक्ति अपनी चिंता, तनाव, कुंठा आदि अनेक प्रकार के आंतरिक विकारों से सहजता से बाहर आ जाता है। इसके स्थान पर उसके आंतरिक गुणों में वृद्धि होने लगती है। डायरी लेखन एक उपचार-विधि के साथ-साथ स्व-मूल्यांकन की एक विशिष्ट तकनीक भी है, जिससे व्यक्ति जीवन के विकास क्रम में अपनी आत्मसमीक्षा और अपना सतत स्व-मूल्यांकन करते हुए सफलता की ओर अग्रसर होता है।

दूसरी उपचार-विधि है—स्वाध्याय। स्वाध्याय का अर्थ है श्रेष्ठ विचारों, श्रेष्ठ चरित्रों, महापुरुषों एवं सत्साहित्यों का अध्ययन। ऐसे अध्ययन से व्यक्ति महापुरुषों की वैचारिक, भावनात्मक स्थिति के संदर्भ में स्वयं का आकलन करता है, और उस दिशा में आगे बढ़ने तथा ऊँचे उठने के लिए आवश्यक प्रेरणा एवं दिशा प्राप्त करता है।

पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार सद्ग्रंथों के अध्ययन, मनन के माध्यम से मानसिक परिष्कार की एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया आरंभ होती है जिसके फलस्वरूप अध्ययनकर्त्ता का दृष्टिकोण स्वस्थ व विधेयात्मक बनता है। साथ ही उसे व्यक्तित्व विकास की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। स्वाध्याय व्यक्ति के मानसिक, भावनात्मक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाता है और व्यक्तित्व की आंतरिक कमजोरियों, ग्रंथियों को दूर करने में भी लाभकारी होता है।

तीसरी विधि के रूप में परामर्श-प्रक्रिया का प्रयोग किया गया है। परामर्श एक मनोविश्लेषण एवं संज्ञानात्मक पुनर्संरचना की प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति को स्वयं को समझने तथा आंतरिक द्वंद्वों, कुंठा आदि समस्याओं को दूर करने का अवसर प्राप्त होता है। परामर्श-प्रक्रिया में परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक स्तर पर व्यक्ति की समस्याओं का निदान करता है तथा समस्या के अनुसार परामर्श तकनीक का चयन कर व्यक्ति को उसकी समस्या के समाधान की ओर प्रेरित कर उसे स्वस्थ होने में सहायता प्रदान करता है।

इस शोधकार्य से यह स्पष्ट होता है कि डायरी लेखन, स्वाध्याय और परामर्श की विधियाँ—किशोरों की समस्याओं का तो सार्थक समाधान करती ही हैं, साथ ही अन्य सभी वर्गों के लिए भी ये विधियाँ व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण, सफल और कारगर प्रक्रियाएँ हैं।

इन्हें न केवल उपचार के लिए, वरन व्यक्तित्व के संतुलन, समायोजन और विकास की दृष्टि से भी अपनाया जा सकता है। मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर किशोर ही नहीं, बल्कि सभी आयु वर्ग के लोगों को समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसे में ये विधियाँ किशोरियों की समस्याओं के समाधान का सहज और सार्थक उपाय हैं, जिनका सैद्धांतिक और प्रयोगात्मक महत्त्व इस शोध अध्ययन में प्रस्तुत हुआ है। ❑

बच्चों के सच्चे अभिभावक बनें

बच्चों को सीखना-सिखाना एक सूक्ष्मप्रक्रिया है, जिसकी न्यूनतम समझ माता-पिता एवं अभिभावकों को होनी अनिवार्य है। इस समझ के अभाव में वे बच्चों पर मेहनत तो बहुत करते हैं, लेकिन जब परिणाम अनुकूल नहीं आते, बच्चे बिगड़ैल निकलते हैं या उद्दंड हो जाते हैं या कहना नहीं मानते, तो फिर अपनी संतानों पर ही वे विश्वास खो बैठते हैं। उन्हें सबके सामने डाँटते, कोसते फिरते हैं। ऐसे में स्थिति सुधरती नहीं, बल्कि और बिगड़ जाती है। नौबत यहाँ तक आ जाती है कि बच्चों के सुधार की संभावनाएँ हाथ से निकल जाती हैं और वे अपने ढंग से, मनमाने तरीकों से जीवन बसर के लिए छोड़ दिए जाते हैं।

ऐसी नौबत न आए, इसके लिए माता-पिता एवं अभिभावकों को बालमन की मोटी समझ रखना जरूरी है। पहला बालमन गीली मिट्टी के लौंदे की तरह होता है, जिसे आप मनचाहा आकार दे सकते हैं। साथ ही वह अपनी कुछ नैसर्गिक प्रतिभा एवं मौलिकता लिए हुए होता है। आप उसे बहुत अधिक नहीं समझा सकते। उसके विकास के लिए उचित वातावरण दे सकते हैं, उसके सीखने के अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर सकते हैं व इसमें आ रहे अवरोधों को हटा सकते हैं तथा उसका स्वतंत्र एवं मौलिक विकास हो, ऐसा यत्न कर सकते हैं। इस सबके बीच की कड़ी है, आपका मित्रवत् एवं संवेदनशील व्यवहार। इतना कुछ बन पड़े तो समझिए कि बच्चे की विकास-प्रक्रिया स्वत: ही उन संभावनाओं के चरम विकास की दिशा में बढ़ चलेगी, जिनके साथ वह पैदा हुआ है।

सबसे महत्त्वपूर्ण है कि यदि सीखने की प्रक्रिया में बच्चे कोई गलती करते हैं, तो उनकी हँसी न उड़ाई जाए, न ही उनसे डाँट-डपट की जाए। उन्हें अपनी गलतियों से सीखने का अवसर दें। अगर फिर भी समझ नहीं आ रहा हो तो बार-बार उन्हें प्यार से समझाएँ। उन्हें अपनी गलती पर हँसी उड़ाए जाने या डाँट-डपट का भय न हो। इस तरह वे बहुत जल्दी सीखेंगे व निर्बाध रूप में उनका विकास गति पकड़ेगा। विकसित हो रही विचारशीलता में उन्हें सहमत-असहमत होने की स्वतंत्रता भी दें। उन्हें अपने अनुभव से जीवन को समझने-सीखने की छूट भी दें।

जरूरी नहीं कि वे भी उसी पेशे को पकड़ें, जिससे आप संबंध रखते हैं या परिवार या खानदान जिसका अनुसरण करता हो या जिसे आप उन पर जबरन थोपने का प्रयास कर रहे हों। बच्चे की मौलिक प्रतिभा, रुचि एवं आवश्यकताओं की पहचान व उनका सम्मान माता-पिता एवं अभिभावकों का पहला कर्त्तव्य है। यदि वे इसमें चूक कर रहे हैं तो फिर बाल-निर्माण की प्रक्रिया आगे चलकर बाधित होगी। प्रारंभ में हो सकता है दबाव में आकर वह आपके बताए मार्ग पर चल पड़े, किंतु अपने मूल स्वभाव के प्रकट होते ही फिर वह अपनी रुचि के अनुकूल पेशा ही पकड़ेगा। ऐसा करने पर फिर अभिभावकों को गहरा झटका लग सकता है व अपने बच्चों पर वे उद्दंडता, अवज्ञा या मनमानी का आरोप लगा सकते हैं। जबकि ऐसा होना स्वाभाविक था, जिसका एहसास बहुत ही कम अभिभावक कर पाते हैं।

बच्चों में सहज रूप से जिज्ञासा का भाव प्रबल होता है। इसे शांत करने के लिए वे बड़ों पर प्रश्नों की बौछार कर सकते हैं। बड़े इन प्रश्नों का बड़ी सूझ एवं धैर्य के साथ जवाब दें। बच्चों की जिज्ञासा को समझें, उन्हें समुचित उत्तर दें तथा और प्रश्न करने के लिए प्रोत्साहित करें। जिस वस्तु, व्यक्ति या घटना के बारे में वे जिज्ञासा रखते हों, उससे संबंधित हर पक्ष का उचित जवाब देने का प्रयास करें। यदि संभव हो तो उन्हें देखकर, सुनकर अर्थात ऑडियो-विजुअल तरीके से समझाने की कोशिश करें। इस तरह वे इनको गहराई से समझ पाएँगे व उनका बौद्धिक विकास भी होगा।

सबसे महत्त्वपूर्ण है कि अपने बच्चों के लिए समय निकालें। उनसे बातचीत करें। इससे उनका ज्ञान बढ़ेगा, भाषा की दक्षता बढ़ेगी, साथ ही आपके साथ आत्मीय जुड़ाव भी बढ़ेगा। बच्चों को कथा-कहानी के माध्यम से नई चीजों

की जानकारी दी जा सकती हैं। बच्चे कथा-कहानियों को विशेष रूप से पसंद करते हैं। इसके अतिरिक्त गीत व पहेलियों के माध्यम से भी बच्चों को नई चीजें व पाठ सिखाए जा सकते हैं। इनसे भी महत्त्वपूर्ण होते हैं जीवंत उदाहरण। विशेष रूप से आचरण-व्यवहार एवं जीवन से जुड़े शिक्षण में माता-पिता एवं अभिभावकों का स्वयं का उदाहरण माने रखता है। बच्चे—हम क्या कह रहे हैं, इससे नहीं; बल्कि हम क्या कर रहे हैं, इससे सीखते हैं। अत: बच्चों को बहुत अधिक प्रवचन या उपदेश देने से बचना चाहिए।

इसके साथ बच्चों को स्वयं कार्य करने के मौके दें। जीवन को समझने व दूसरों के साथ अंत:क्रिया का अवसर दें। जीवन में पढ़ाई एवं नौकरी ही सब कुछ नहीं होती, जैसा कि कुछ अभिभावक मान बैठते हैं व बच्चों को इसी दायरे में सिमेटकर रखते हैं। उनकी शैक्षणिक योग्यता के साथ शारीरिक-मानसिक विकास, बौद्धिक विस्तार, भावनात्मक संतुलन आदि भी महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। साथ ही जीवनमूल्यों के रूप में आध्यात्मिक पक्ष तो सबसे अहम है ही, जिस ओर अधिकांशत: लोग सचेष्ट नहीं रहते।

इस तरह बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए उचित परिवेश देना, वातावरण तैयार करना माता-पिता एवं अभिभावकों का कर्त्तव्य है। उनके विकास में जो भी अवरोधक तत्त्व हों, उनसे बचाव करना भी महत्त्वपूर्ण है। बच्चे छोटी पौध जैसे होते हैं, जिनका प्रारंभिक चरणों में विषाक्त तत्त्वों से बचाव करना आवश्यक होता है। उनके लिए उचित बाड़े की आवश्यकता होती है। समय के साथ वे बड़े हो जाते हैं, तो स्वयं ही इतने समझदार हो जाते हैं कि इनसे निपटना जानते हैं। तब तक उनका संरक्षण अपेक्षित रहता है। जो अभिभावक इन बातों का ध्यान रखते हैं, वे अपने बच्चों के समग्र विकास का पारितोषिक भी प्राप्त करते हैं। ❑

महाभारतकाल की बात है। विदुर जी ने धृतराष्ट्र को समझाने का प्रयास किया कि पुत्रमोह में पड़कर विवेकहीन मत बनो, अनीति मत अपनाओ। दुर्योधन को पता लगा कि चाचा विदुर पिताजी को उसके विरुद्ध सलाह दे रहे हैं। उसने उन्हें दरबार में बुलाया और अपमानित किया। कहा—"तुम दासीपुत्र हो। मेरा ही अन्न खाकर मेरी ही निंदा करते हो।"

विदुर जी जरा भी विचलित न हुए। कहा—"बेटा! मैं क्या हूँ, यह तुमसे अधिक अच्छी तरह समझता हूँ। वन के शाक-पात मैं 12 वर्षों से खा रहा हूँ, न कि तुम्हारा अन्न। तुम्हारे पिताजी अर्थात मेरे बड़े भाई ने मुझे बुलाकर मेरा मत माँगा तो मुझे जो उचित लगा, अपने अनुभव के आधार पर सलाह दी। तुम्हें नहीं रुचता तो पिता को सलाह दे सकते हो कि मुझे परामर्श के लिए न बुलाया करें।"

विदुर जी अपने तप-तेज से दुर्योधन का अनिष्ट भी कर सकते थे, पर वे न उत्तेजित हुए, न विचलित। उनकी सहनशक्ति, संतुलन क्षमता अद्‌भुत थी। जिसने लंबे समय शरीर को सात्त्विक पदार्थों तथा अंत:करण को सात्त्विक विचारों का आहार दिया है, ऐसे तपस्वी में ही ब्राह्मणत्व का तेज विकसित होता है।

कर्मशुद्धि है आध्यात्मिक चेतना का आधार

जीवन हमारे कर्म संघर्ष का परिचय है, पर्याय है। जीवन में कर्म व संघर्ष ये बताते हैं कि हम जीवित हैं, हमारे पास जीवन है। कोई भी जीवन ऐसा हो, कोई भी जीवन का क्षण ऐसा हो, जहाँ क्रिया न हो वहाँ चेतना प्रतीत नहीं होती है। निष्क्रिय यानी कि निश्चेतन। कर्म से जीवन का परिचय मिलता है। कर्म से जीवन परिभाषित होता है, लेकिन कर्म में अनजाने में ही अपने आप, अनचाहे दोष घुल जाते हैं।

जैसे गोस्वामी जी कहते हैं—**भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥** अर्थात भूमि पर पड़ते ही पानी गंदला हो जाता है, मैला हो जाता है। ये ऐसे ही कुछ हो जाता है, जैसे कि जीव जब जन्म लेता है तो माया अपने आप उससे लिपट जाती है। जब हम कर्म करते हैं, जब सोते हैं, शयन करते हैं तो हममें कोई दोष नहीं होते हैं, हम गलत नहीं होते हैं। सोते समय हम किसी के बारे में बुरा नहीं सोचते, हम ईर्ष्या नहीं करते, हम द्वेष नहीं करते, हमारे अंदर वैर-वैमनस्य नहीं होता। लेकिन जब हम जगते हैं तो अपने आप मन के सारे दोष भी जग जाते हैं। इस तरह हमारे जगने के साथ हमारे मन के विकार भी अपने आप जग जाते हैं।

जैसे बच्चा जब छोटा होता है, शिशु होता है, माँ की गोद में होता है तो वो पूरी तरह से निर्दोष होता है, पूरी तरह से निष्कलुष होता है, पूरी तरह से निर्मल होता है। लेकिन वही बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसके अंदर सारी चीजें अपने आप जगने लगती हैं, उसका एक व्यक्तित्व सबके सामने आता है। जब वह और बड़ा होता है तो बचपन में उसका जो झगड़ा खिलौनों के लिए होता था, वही झगड़ा जमीन-जायदाद के लिए होने लगता है। मूल में अगर हम देखें तो बच्चे में जो दुर्गुण बहुत छोटे में, अंकुरित अवस्था में, बीज रूप में होते हैं, वही बड़े होने पर कुछ ज्यादा फैल जाते हैं।

हम कर्म करते हैं तो कब उसमें दोष घुल जाते हैं, पता ही नहीं चलता। फिर वो दोष हमारे कर्म को धुँधला कर देते हैं, मैला कर देते हैं और परिणाम को भी मैला कर देते हैं। इस तरह दूषित कर्मों के कारण परिणाम भी दूषित हो जाते हैं। इन कर्मों को दोषमुक्त करने का उपाय क्या है ? तो इसके लिए भगवान कहते हैं—

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

—गीता 3/30

सभी कर्मों का मुझमें संन्यास कर दो, मेरे में त्याग कर दो। व्यापक हित के लिए, लोकहित के लिए, आत्महित के लिए, ईश्वर के लिए, ईश्वर की करुणा के लिए, ईश्वर की कृपा के लिए कर्म करो। इस तरह कर्म करने से कर्म के दोष अपने आप हट जाएँगे।

भगवान कहते हैं कि अगर मुझमें तुम कर्मों को त्यागोगे, मेरे लिए कर्म करोगे, मुझमें अपने सभी कर्मों को विसर्जित करोगे तो **अध्यात्मचेतसा**—तुम्हारी चेतना आध्यात्मिक हो जाएगी।

चेतना आध्यात्मिक क्यों नहीं है ? चेतना दूषित क्यों है ? क्योंकि उसमें कुछ दोष आ गए हैं और वो दोष हैं—स्वार्थ का दोष, अहंकार का दोष। वो दोष हैं—आसक्ति का दोष, आकांक्षा का दोष, कामना का दोष—इस तरह हमारी चेतना में बहुत सारे दोष आ गए हैं, इसलिए हमारी चेतना आध्यात्मिक नहीं है।

इसलिए भगवान कहते हैं—**निराशीः** यानी आशारहित हो जाओ। **निर्ममः**—ममतारहित हो जाओ। **युध्यस्व**—युद्ध तो करो लेकिन, **विगतज्वरः**—संताप रहित हो करके।

हमारे सामान्य जीवन के कर्मों में ये सारी चीजें हैं यानी हमारे कर्मों में आशा, ममता, आसक्ति सम्मिलित रहती है, लेकिन जैसा कर्म करने के लिए गीता के इस श्लोक में कहा गया है, वैसा कुछ नहीं है; बल्कि इसका उलटा है। इसलिए संपूर्ण जीवन हम कर्म करते हैं, लेकिन हमारी चेतना आध्यात्मिक नहीं होती है। हम कर्म तो करते हैं, लेकिन आशारहित कभी नहीं होते हैं; क्योंकि हम कर्म तो बाद में करते हैं, इसके पहले ही हमारी आशा जीवित हो जाती है।

हम सोचते हैं और फिर सपने अपने आप बुनने लगते हैं। आशाओं के आसमान अपने आप ही हमको घेर लेते हैं। हम सोचने लगते हैं कि ऐसा होगा, फिर ऐसा होगा, फिर ऐसा होगा। फिर बड़ी दूर तक आशा का ताना-बाना बुनते चले जाते हैं। वो आशा पूरी हो या न हो, लेकिन उस आशा में ही हमको बहुत सुख मिलता है, बहुत अच्छा लगता है। जैसे—हमें कहीं यात्रा पर जाना है, तो जाने से पहले ही हम अपनी यात्रा के सपने बुनने लगते हैं। टिकट अभी हुई हो या न हुई हो, लेकिन हम पहले ही अपने गंतव्य के सपने देखने लगते हैं।

निर्ममः यानी कर्म करने में हमें ममतारहित होना चाहिए, लेकिन हम ममतापूर्ण होते हैं। अपने कर्म में, हमारी ममता बहुत गहरी हो जाती है। जैसे—अगर हमने कोई लेख लिखा हो और जो हमने लिखा है, उसके बारे में कोई कहे कि क्या बेकार तुमने लिखा है। फेंको इसको, किसी काम लायक नहीं है ये। अगर हम शिष्टाचारवश कुछ न कह सकें तो भी मन में अपार दुःख होता है; क्योंकि हम जो करते हैं, उसमें हम घुल जाते हैं, अपने आप में। उसमें हम समाहित हो जाते हैं।

जैसे पानी होता है और उसमें हम शक्कर घोलें या नमक, दोनों ही दिखाई नहीं देते, पारदर्शी होते हैं। रंग देखकर हम यह नहीं पहचान पाते कि इसमें कुछ घुला हुआ है। अगर हम पानी में थोड़ा-सा नमक डाल दें, तो पानी नमकीन हो जाएगा; इस तरह रंगहीन चीजें पानी में घोलने से उसका स्वाद बदल जाता है, लेकिन रंग नहीं बदलता है। अगर हम उसमें चीनी घोल दें तो उसका स्वाद बदल जाता है, लेकिन रंग नहीं बदलता है। जब हम उसको चखेंगे तो मीठा या नमकीन लगेगा—पानी। उसी तरह से जो कर्म हम करते हैं, उसमें अनायास ही हमारी ममता घुल जाती है। हमारा 'मैं' पन घुल जाता है, हमारा अपनत्व घुल जाता है, हमारी आसक्ति घुल जाती है और कोई व्यक्ति अगर उसकी निंदा करता है तो हमें बुरा लगता है।

हम जहाँ रहते हैं, उस जगह से ही हम कहीं-न-कहीं अनजाने में आसक्त हो जाते हैं; क्योंकि हम उस घर के कमरों में, उसकी दीवारों में, उसकी खिड़कियों में, उसकी छत में घुलने लगते हैं धीरे-धीरे। कमरे को हमसे कोई मतलब नहीं है। कमरा हमसे नहीं घुल-मिल रहा है, लेकिन हम उसके बारे में सोच-सोचकर उससे घुल-मिल जाते हैं।

जब हम किसी कमरे को छोड़ते हैं तो कमरा नहीं रोता है, मकान नहीं रोता है; बल्कि हम रोते हैं। हम बार-बार याद करते हैं कि पहले हम यहाँ रहते थे। कमरे को याद नहीं कि हम यहाँ पहले रहते थे, जिस मकान के सामने से आप गुजरें तो उस कमरे को कोई परेशानी नहीं हुई, उसको कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन हमको दिक्कत होती है कि हम यहाँ रहते थे, यह हमारा वाला मकान है। पहले हम यहाँ काम करते थे, अब नहीं करते हैं, फिर भी उससे जुड़े हुए हैं, घुले हुए हैं, समाये हुए हैं—यह ममता है। इसलिए भगवान कहते हैं निर्ममः—ममतारहित हो जाओ।

हम यदि ऑफिस में काम करते हैं और किसी काम को करते समय कोई अन्य काम हमारे सामने आ गया, तो उसके लिए बड़ी परेशानी लिए घूमते हैं। घर में कोई रोक दे, टोक दे कि आज बड़ी टेंशन लिए हुए हो, तो कहते हैं कि अरे तुम्हें क्या पड़ी है? तुम जानते नहीं हो कि आज ऑफिस में कितना काम था, आज ऐसा-ऐसा काम हमें करना पड़ा, इस तरह व्यक्ति के मन में बहुत संताप समाया रहता है, 24 घंटे वह संताप में रहता है कि आज ऐसा करना है, वैसा करना है। भगवान कहते हैं—**विगतज्वरः**, संताप को छोड़ दो।

आशा, ममता और संताप और हमारी आसक्ति, स्वार्थ व अहं, कामना व आकांक्षाएँ, ये हमारे जीवन के, हमारे कर्म के दोष हैं। कर्म को इन दोषों से मुक्त होना चाहिए। हम क्या काम करते हैं, यह हमारे काम की गुणवत्ता से प्रदर्शित होना चाहिए कि यह काम किसने किया है। काम छोटा या बड़ा नहीं होता है, बल्कि काम दोषयुक्त या गुणयुक्त होता है। कार्य में कर्त्ता की खुशबू या बदबू होती है, उसकी कार्यशैली की सुगंध या दुर्गंध होती है।

पतंजलि कहते हैं—द्रष्टा-दृश्य का संयोग, यही हमें बाँधता है। हम बँध जाते हैं। इसको ले करके भारी झगड़ा खड़ा होता है। कभी-कभी तो भारी बैर हो जाता है। द्रष्टा और दृश्य के संयोग से द्रष्टा की विकृतियाँ कर्म में घुल जाती हैं। ये कर्म वो हैं, जो हमें दूषित करते हैं। हमारा कर्म अगर दोषयुक्त है तो चित्त में मलिनता, कर्मराशि, संस्कार, बहुत सारी परतें चढ़ जाती हैं और कर्म अगर दोषमुक्त हो तो? तो वो परतें निकल जाती हैं। कर्म के दोषमुक्त होने पर चेतना स्वाभाविक रूप से आध्यात्मिक हो जाती है। ❑

युगगीता – 239

प्रकृति व पुरुष से पार विशेष पुरुष हैं परमेश्वर

(श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तमयोग नामक पंद्रहवें अध्याय की सोलहवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तमयोग नामक पंद्रहवें अध्याय के सोलहवें श्लोक की विवेचना प्रस्तुत की गई थी। उस सूत्र में श्रीभगवान कहते हैं कि इस संसार में क्षर (अर्थात नाशवान) और अक्षर (अर्थात अविनाशी) ये दो ही प्रकार के पुरुष हैं। संपूर्ण प्राणियों के शरीर को क्षर और जीवात्मा को अक्षर कहा जाता है। श्रीभगवान ने गीता के सातवें अध्याय में परा तथा अपरा नाम से जिन प्रकृतियों का वर्णन किया था, आठवें अध्याय में अधिभूत और अध्यात्म के नाम से जिनका उल्लेख किया था एवं तेरहवें अध्याय में क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के नाम से जो परिभाषित किया था—वैसे ही संदर्भ में वे यहाँ दो प्रकार के पुरुषों का वर्णन कर रहे हैं। यहाँ वे एक को नाशवान तथा दूसरे को अविनाशी बताते हैं। आत्मा को कूटस्थ अर्थात अपरिवर्तनीय बताते हुए वे कहते हैं कि इस आत्मा का किसी भी अवस्था में क्षय, नाश या अभाव नहीं होता, इसलिए यह अक्षर है।

यह नाशवान शरीर जन्म से पहले नहीं था, यह तो जन्म के साथ ही अस्तित्व में आया है, किंतु आत्मा के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है, वह तो तीनों कालों में एक समान रहने वाला है। छह प्रकार के विकारों से युक्त होना शरीर का सहज धर्म माना गया है। जन्म लेना, अस्तित्व में रहना, वृद्धि करना यानी बढ़ना, क्षीण होना, कुछ काल तक बने रहना एवं फिर नष्ट हो जाना—ये नाशवान शरीर के विकार कहे जाते हैं। अविनाशी आत्मा में ये सारे दोष नहीं होते। वह अविनाशी आत्मा न तो कभी जन्मता है, न कभी मरता है, न कभी होता है और न कभी नष्ट होकर पुनः अस्तित्व में आता है। यह नित्य है अर्थात क्षय क्रिया रूप व्यापार से रहित है। यह शाश्वत अर्थात अविनाशी है और नित्य नवीन है। आत्मा के षड्विकारों से रहित होने के कारण ही वह अविनाशी कहा गया है।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण अगला सूत्र कहते हैं कि—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ 17॥

शब्दविग्रह—उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः, यः, लोकत्रयम्, आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः॥

शब्दार्थ—उत्तम (**उत्तमः**), पुरुष (**पुरुषः**), तो (**तु**), अन्य ही है, (**अन्यः**), जो (**यः**), तीनों लोकों में (**लोकत्रयम्**), प्रवेश करके (**आविश्य**), सबका धारण-पोषण करता है (एवं) (**बिभर्ति**), अविनाशी (**अव्ययः**), परमेश्वर (और) (**परमात्मा**), इस प्रकार (**इति**), कहा गया है (**उदाहृतः**)।

अर्थात उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो परमात्मा के नाम से पुकारा गया है। वही अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर सबका भरण-पोषण करता है। श्रीभगवान के द्वारा कहे गए यदि इन दोनों श्लोकों को—सोलहवें एवं सत्रहवें श्लोक को साथ-साथ समझने का यत्न करें तो वे कह रहे हैं कि इस सृष्टि में तीन संभावनाएँ हैं। एक नाशवान शरीर है, संसार है, ये सब परिवर्तनशील हैं, बनते-बिगड़ते तथा नष्ट होते हैं। दूसरी उस नाशवान संसार में छिपी हुई अविनाशी आत्मा है और तीसरी, उत्तम पुरुष पुरुषोत्तम वह है, जो परमात्मा है। वह परमात्मा, इन शेष दो स्थितियों का, शेष दो पुरुषों का अतिक्रमण कर गया है एवं इसीलिए वह शेष दो से भिन्न एवं उत्तम व विलक्षण है।

इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि क्षर तथा अक्षर तो लौकिक हैं, परंतु परमात्मा लोकों से परे, लोकों के पार होने के कारण अलौकिक हैं। उनके अलौकिक होने के कारण ही वे मन, बुद्धि, तर्क व विचार की पकड़ में नहीं आ पाते हैं। उनका अस्तित्व इनसे भिन्न हो जाता है; क्योंकि वे इनकी सीमाओं से दूर, बहुत दूर हैं। ये पुरुषोत्तम परमात्मा सभी लोकों में स्थित होने के कारण सभी के भरण-पोषण की व्यवस्था बनाते हैं। जो सभी के भरण-पोषण का कारण, आधार व माध्यम हो तो उसके किसी के साथ किसी प्रकार का पक्षपात करने का प्रश्न ही नहीं होता।

परमात्मा के अंश के रूप में विद्यमान भगवान सूर्य क्या सबको समान रूप से ऊर्जा, ऊष्मा व प्रकाश नहीं देते? उन्हीं पुरुषोत्तम के अंश के रूप में विद्यमान सोमदेव क्या सबको समान रूप से शीतलता प्रदान नहीं करते? परब्रह्म परमेश्वर के अंश के रूप में विद्यमान धरती, क्या सबको समान रूप से धारण नहीं करती? परमात्मा भी इसी तरह से सभी लोकों में प्रविष्ट होकर सबका भरण-पोषण करते हैं।

सही पूछा जाए तो सर्वत्र उन्हीं एक परमेश्वर की सत्ता है, मात्र हमारे अविद्यादि क्लेशों के कारण दूसरी सत्ता दिखाई पड़ंती है। वह पुरुषोत्तम तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वत्र एवं सर्वगुणसंपन्न हैं। वे प्रकृति के समस्त गुणों से पार हैं एवं प्रकृति के समस्त व्यापार से परे होने के कारण ही उनको पूर्वोक्त दोनों पुरुषों से भिन्न तथा श्रेष्ठ बताया गया है। शेष दो पुरुष इन लोकों में प्रविष्ट होते ही यहाँ की कार्यशृंखला में बँध जाते हैं, परंतु पुरुषोत्तम परमात्मा इन तीनों लोकों में प्रविष्ट भी होते हैं, सबके भरण-पोषण की व्यवस्था भी बनाते हैं, परंतु तब भी किसी से लिप्त नहीं होते इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण उनको अन्य पुरुष, भिन्न पुरुष, उत्तम पुरुष एवं विलक्षण पुरुष कह करके पुकारते हैं।

योगसूत्र में महर्षि पतंजलि, इसी को कुछ ऐसे परिभाषित करते हैं कि वे ईश्वर, वे पुरुषोत्तम, वे परमात्मा—क्लेश, कर्म, विपाक और आशय के स्पर्श से रहित, एक विशेष प्रकार के पुरुष हैं—**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥** *(योगसूत्र, 1/24)*

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश—पंचक्लेश के नाम से पुकारे गए हैं; क्योंकि ये ही कर्म बंधन का कारण बनते हैं। कर्म का मिलने वाला फल विपाक कहलाता है। उससे बनने वाले वासनारूपी संस्कार को आशय कहते हैं। नाशवान पुरुष इन कर्मों को करने का भाव रखते हुए स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है और इसीलिए कर्मों के पीछे निहित भावना के अनुसार परिणाम को प्राप्त करने के लिए उसे भोक्ता भी बनना पड़ता है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं कि जो पुरुष इन भोगों से अपरामृष्ट अर्थात संपर्करहित है, वह विशेष पुरुष ही ईश्वर या पुरुषोत्तम है। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि अनेक महापुरुष कर्मबंधनों को काटकर, बंधनमुक्त अवस्था को, कैवल्य को प्राप्त होते हैं, परंतु ईश्वर या पुरुषोत्तम वो विशेष पुरुष हैं जिनका इन बंधनों से न कभी संपर्क हुआ और न होगा; क्योंकि वे सदा ही इनसे पार व परे हैं। इसीलिए श्रीभगवान उनको इस तीसरी एवं विशेष श्रेणी में रखते हैं।

सांख्य दर्शन में प्रकृति एवं पुरुष को समस्त जगत तथा व्यापार का आधार माना गया है। समस्त अचेतन-संसार प्रकृति का ही व्यक्त रूप है और सभी जीव; पुरुष ही हैं। इन दोनों ही तत्त्वों से परे एक विशेष पुरुष है, जिसे श्रीभगवान पुरुषोत्तम कह करके पुकारते हैं एवं योग तथा सांख्य—ईश्वर कहकर पुकारते हैं। ऐसा इसलिए कि सामान्य पुरुषों में क्लेषादि का भोगोपचार होता है, परंतु ईश्वर नामक विशेष पुरुष में ऐसा नहीं होता; क्योंकि वे न तो कभी बँधे थे और न ही उनकी कभी किसी कर्म, बंधन, विपाक, क्लेश इत्यादि में बँधने की संभावना है। वे ही पुरुषोत्तम हैं। ❑

अनैतिकताओं की दुरभिसंधियों के उन्मूलन की जिम्मेदारी किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, वरन पूरे समाज की है। इस विशाल आयोजन के संपादन हेतु आने वाले समय में उन सभी प्रतिभाओं को एकत्रित होना पड़ेगा, जिन्हें दैवी प्रेरणा इस उच्चस्तरीय कार्य के लिए प्रेरित कर रही है। एकांत के क्षणों में अपने आप से पूछें कि क्या आपको महाकाल का आमंत्रण मिला है। उत्तर हाँ में मिले, तो तुरंत युग निर्माण की यात्रा में निकल पड़ें। *—परमपूज्य गुरुदेव*

जानें महिमा ओंकार की

भारतीय परंपरा में जहाँ हर मंत्र का शुभारंभ ओंकार से होता है, वहीं ओंकार स्वयं में एकाक्षरी मंत्र है। इसी से सारे मंत्र प्रस्फुटित हुए हैं और यही सभी मंत्रों का आदिस्रोत है। इसीलिए इसे शब्दब्रह्म, नादब्रह्म की संज्ञा भी दी गई है। यह स्वयं ब्रह्म का प्रतीक है। पातंजल योगसूत्र में '**तस्य वाचकः प्रणवः**' कहकर इसी सत्य का वर्णन किया गया है।

उपनिषदों में ओंकार पर विशेष प्रकाश डाला गया है। इसमें ब्रह्मप्राप्ति के लिए प्रणवोपासना का विधान बताया गया है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि आत्मा को अधर अरणि तथा ओंकार को उत्तर अरणि बनाकर मंथनरूपी अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान की ज्योति का प्रादुर्भाव होता है, जिसके प्रकाश में आत्मतत्त्व का साक्षात्कार किया जा सकता है। इससे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। गीता में ओंकार को एकाक्षर ब्रह्म की संज्ञा दी गई है, जिसकी साधना से उपासक परमगति को प्राप्त होता है।

वास्तव में ओंकार सृष्टि के अंतर में गुंजायमान मूल ध्वनि है, आदिध्वनि है, जिसका स्वरूप अनादि, अनंत है। बाकी सारी ध्वनियाँ घर्षण से उत्पन्न होती हैं, किसी के आधार पर गूँजती हैं; जबकि ओंकार बिना किसी दूसरे अवलंबन के गुंजायमान है, इसीलिए इसे अनाहत ध्वनि भी कहते हैं। अतः इसे सार्वभौम, सार्वकालिक एवं शाश्वत ध्वनि भी कह सकते हैं, जिसकी कोई भी साधक अपनी साधना के चरम पर अनुभूति करता है।

आश्चर्य नहीं कि विभिन्न धर्मों में ओंकार अपने ढंग में उपस्थित मिलता है। बौद्ध धर्म में—'**ॐ मणि पद्मेहुम्**' मंत्र सर्वप्रचलित है, जिसमें **ॐ** को मणिपुर चक्र में अवस्थित माना गया है। जैन धर्म के णमोकार महामंत्र का शुभारंभ ओंकार से होता है। सिखों के प्रथम गुरु नानक जी के शब्दों में—एक ओंकार सतनाम, अर्थात एक ओंकार ही सत्यनाम है। अन्य धर्मों में भी ओंकार विभिन्न स्वरूपों में मिलता है। वेदव्यास जी ने इसे मंत्राराणाम् प्रणव सेतु अर्थात सारे मंत्रों का सेतु कहा है।

ॐ मंत्र तीन अक्षर—अ, उ, म् से मिलकर बना है, जो जीवन की तीन अवस्थाओं के द्योतक हैं, जीवन के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणस्वरूप के प्रतीक हैं। सृष्टि के मूल में सक्रिय सृजन, स्थिति एवं परिवर्तन के अधिष्ठाता ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर तथा इनकी शक्तियाँ भी इसका ही विस्तार हैं।

परमात्मा के सत्-चित्-आनंद रूप को इसमें समझ सकते हैं। व्यष्टि स्तर पर ये जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्था के प्रतीक हैं। ओंकार में स्थित बिंदु चौथी तुरीय अवस्था का सूचक है। गायत्री महामंत्र की तीन व्याहृतियों भूः, भुवः, स्वः को ओंकार का ही विस्तार समझा जा सकता है। इस तरह ओंकार में हम जीवन एवं अस्तित्व के समग्र स्वरूप को बीज रूप में देख सकते हैं।

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः॥

अर्थात—जो स्वयं दोषयुक्त होते हुए भी दूसरों पर दोषारोपण करता है और असमर्थ होते हुए भी दूसरों पर क्रोध करता है—वह अत्यंत मूढ़ है।

ध्यानबिंदु उपनिषद् के अनुसार—ओंकार मंत्र की विशेषता यह है कि इसे पवित्र, अपवित्र किसी भी स्थिति में जपा जा सकता है। अतः हर पल इसका जप एवं इससे जुड़े ब्रह्मस्वरूप परमतत्त्व का चिंतन एवं मनन करते हुए साधक इसके प्रकाश में अपने आत्मस्वरूप का ध्यान कर सकता है तथा जीवन के परम लक्ष्य की ओर गतिशील हो सकता है। ❑

व्यक्तित्व की परिचायक है वाणी

मनुष्य को ईश्वर द्वारा दिया गया एक अनुपम उपहार 'वाणी' है। मनुष्य समाज में विचारों के आदान-प्रदान के लिए शब्द आवश्यक हैं और इन शब्दों को स्वर देने का कार्य वाणी का है। इस संसार में सारे संबंधों का ताना-बाना वाणी के धरातल पर टिका होता है। जिस प्रकार धन का दुरुपयोग मनुष्य को संकट में डाल देता है, उसी तरह वाणी का दुरुपयोग भी उसके समक्ष अनेक समस्याएँ पैदा कर देता है, फिर भी मनुष्य का ध्यान इस ओर नहीं जाता। फलस्वरूप वह कई तरह की कठिनाइयों से घिरा रहता है और जीवनभर इन समस्याओं को सुलझाने में बिता देता है।

यह सर्वविदित है कि द्रौपदी द्वारा दुर्योधन को कहे गए कटु वचन 'अंधे की औलाद अंधी' ने उसके मन में ऐसा विषबीज बोया, जो महाभारत जैसे महासंग्राम का कारण बना। इसलिए किसी भी बात को बिना सोचे-समझे बोलने से भयंकर स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है।

कबीरदास जी भी वाणी के संदर्भ में यही बात कहते हैं—**बोली एक अनमोल है, जो कोई बोलै जानि। हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आनि॥** अर्थात इस जगत् में बोली अत्यंत अनमोल है, जो कोई भी इसका सही उपयोग करना जानता है, वह इसे अपने मुख से बाहर निकालने से पहले हृदय की तराजू पर भली भाँति तौल करके ही बोलता है।

इस तरह वाणी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। शब्द क्या बोले जाते हैं, क्या कहे जाते हैं, यह बहुत महत्त्व रखता है। जो बोला जाता है, वो कितना सारपूर्ण है और कितना निस्सार, यह महत्त्वपूर्ण बात है। विद्वान पुरुष यह कहते हैं कि दूसरों को प्रभावित करने वाला कोई भी मनुष्य वाणी से गलत बात नहीं बोलता, सब अच्छी-अच्छी बातें बोलते हैं; लेकिन अच्छी बातों का आचरण कोई नहीं करता। आचरण से सभी विमुख होते हैं। इसी कारण वाणी अपना प्रभाव नहीं दिखा पाती और कहीं-कहीं अप्रामाणिक भी सिद्ध होती है।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में तीन तरह के तप की बात कहते हैं—देह का तप, वाणी का तप और मन का तप। इन तपों में वाणी का तप क्यों जरूरी है? वाणी के तप का हमारे जीवन में क्या महत्त्व है? क्योंकि वाणी का संबंध हमारी प्राण-ऊर्जा से होता है। हमारे जीवन में सबसे ज्यादा प्राण अगर क्षीण होते हैं, तो दो तरीके से। वाद-विवाद और स्वाद से।

गोस्वामी जी कहते हैं—**बाद-बिबाद स्वाद तजि भजि हरि।** हम प्राय: वाद-विवाद करके अपने ज्ञान का बखान करना चाहते हैं, वाद-विवाद से हम सम्मान व प्रतिष्ठा पाना चाहते हैं और अपना प्रभुत्व जमाना चाहते हैं कि हम बुद्धिमान हैं, ज्ञानी हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं। इसके अलावा हम स्वाद के पीछे भी भागते हैं, इसके लिए तरह-तरह के व्यंजन चखते हैं। खट्टा-मीठा, तीखा खाने लगते हैं, ये खट्टा-मीठा, तीखा खाने से क्या होता है? खट्टा, मीठा, तीखा अधिक खाने से हमारे शरीर के पंचभूतों में असंतुलन हो जाता है और हम बीमार पड़ने लगते हैं और फिर उस बीमारी को ठीक करने के लिए उससे हमारा शरीर जूझता रह जाता है।

वाद-विवाद करने और स्वाद ग्रहण करने में हमारे किस अंग की सक्रियता होती है? जिह्वा की। आजकल के जमाने में किसी को दिव्यास्त्र तो मिलते नहीं कि आग्नेयास्त्र चलाया, वरुणास्त्र चलाया, पाशुपतास्त्र चलाया, ऐंद्रास्त्र चलाया, ये अस्त्र तो नहीं मिलते हैं, लेकिन एक अस्त्र सबके पास सुलभ है, क्या है? जिह्वास्त्र। किसी को भी खरी-खोटी सुना दो, किसी को भी आहत कर दो। जीभ में बिच्छू का डंक है, इसलिए भगवान कहते हैं कि इससे काम नहीं चलेगा, वाद-विवाद और स्वाद से काम नहीं चलेगा, स्वाध्याय से काम चलेगा।

इसलिए भगवान श्रीकृष्ण गीता के सत्रहवें अध्याय के पंद्रहवें श्लोक में वाणी के तप का वर्णन करते हुए कहते हैं—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

अर्थात—जो उद्वेग न करने वाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रों के पठन का एवं परमेश्वर के नाम-जप का अभ्यास है; वही वाणी संबंधी तप कहा जाता है।

तप में मन यों ही नहीं लगता है। मन लगाने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। बार-बार हमारी यादें और हमारी आदतें तप-साधना में बाधा पहुँचाती हैं। इसलिए यथासंभव वाणी का तप करो। इसके लिए **अनुद्वेगकरं वाक्यं**—कड़ुए वचन नहीं बोलो। **सत्यं**—सत्य बोलो, **प्रियहितं च यत्**—थोड़ा बोलो, लेकिन प्रिय बोलो, हितकारी बोलो। वाणी पर संयम रखो। वाणी के संयम से प्राण-ऊर्जा का संरक्षण होता है और यह ऊर्जा अग्रिम तप-साधना में सहायक होती है।

वाणी का प्रयोग भली प्रकार सोच-समझकर करने से ही इसके सत्परिणाम मिलते हैं अन्यथा गलत वाणी के प्रयोग से दुष्परिणाम भी भुगतने पड़ सकते हैं। वास्तव में मुख से निकला प्रत्येक शब्द मंत्र है। जिस प्रकार मंत्रों का उच्चारण किसी मांगलिक अवसर पर ही होता है, उसी प्रकार शब्दों का प्रयोग भी मंत्रों की तरह उपयुक्त अवसर देखकर और मंगल के लिए ही होना चाहिए, तभी उसके सुखद परिणाम प्राप्त होते हैं। असत्य, तिरस्कारयुक्त, निंदक एवं शांत हुए कलह को पुनः भड़काने वाले वचन नहीं बोलने चाहिए, बल्कि सत्य, मधुर, सुखद और सार्थक वचनों द्वारा जो व्यक्ति पुण्यों का संचय करते हैं, वह पुण्य तो तीर्थों पर भी जाने से संभव नहीं होता।

वाणी में वह शक्ति है जो ताप, तीर और तलवार में भी नहीं है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष विषम परिस्थितियों में भी भाषा की शक्ति को निरर्थक नहीं गँवाते। इसलिए कम-से-कम और आवश्यकता पड़ने पर ही अपनी वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

वाणी मानव के व्यक्तित्व का परिचायक है। अंतर के भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का सशक्त माध्यम है। हमारी सरल और मधुर वाणी ही दूसरों को प्रभावित करती है। सिर्फ मधुर वाणी की वजह से ही हम दूसरों को अपनी ओर से कुछ भी न देकर बहुत कुछ दे जाते हैं। इसलिए विवेक से ही वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

मानव जीवन अनन्य पुण्यों के उदय से मनुष्य को प्राप्त होता है। इस जीवन के प्रत्येक पल को जीवन का अंतिम पल मानकर जीने से हम ईश्वरप्रदत्त वाणीरूपी उपहार के प्रति सदा सजग रहते हैं और निरर्थक नहीं बोलते। ऐसे शब्द जो स्वयं को और दूसरों को सुख पहुँचाएँ, शीतलता प्रदान करें, आनंदकारी और हितकारी हों, उन्हीं का प्रयोग करना चाहिए अन्यथा चुप रहना ही श्रेष्ठ है। लौकिक व्यवहार में भी उन्हीं व्यक्तियों को सम्मान मिलता है, जिनका वाणी पर पूर्ण अनुशासन होता है। जिस प्रकार शक्कर बाहर और अंदर, दोनों ओर से मीठी होती है, वैसे ही मनुष्य के हृदय और वाणी में समान रूप से मधुरता होनी चाहिए; तभी उसका व्यवहार शुद्ध बन पाता है।

कहा जाता है कि इस पृथ्वी पर तीन रत्न हैं—पहला जल, दूसरा अन्न और तीसरा मधुर वाणी। हम सब अज्ञान के कारण ही पत्थर के टुकड़ों को रत्नों के नाम से पुकारते हैं। घर, परिवार और समाज में शांति स्थापित करने के लिए वाणी पर नियंत्रण अति आवश्यक है। यदि हम इस ओर ध्यान दें तो घर-परिवार व अपने आस-पास के माहौल में स्वर्ग समान आनंद वाणी से ही बिखरने लगेगा।

भये वा यदि वा हर्षे संप्राप्ते यो विमर्शयेत्।
कृत्यं न कुरुते वेगान्न स सन्तापमाप्नुयात्॥

अर्थात—भय और हर्ष के समय जो विचार करता है और जल्दी-जल्दी में कोई विवेकहीन कार्य नहीं करता वह कभी दुःखी नहीं होता।

वाणी का अनुशासन हमारे आत्मिक विकारों यथा क्रोध, मान, माया, लोभ को भी नियंत्रित करता है। वाणी की मधुरता के साथ व्यवहार की निष्कपटता भी आवश्यक है। मर्यादा से बाहर होने पर जिस प्रकार सद्व्यसन भी दुर्व्यसन बन जाते हैं, उसी प्रकार अधिक बोलना भी विपत्तियों को निमंत्रित करता है। अतः वाणी और कर्म का समन्वय ही सफल जीवन का राजमार्ग है। अनुशासित और मर्यादित वाणी ही मनुष्यता की परिचायक है। ❑

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी–1

आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांत

(प्रथम किस्त)

परमपूज्य गुरुदेव की उद्बोधनों की शैली एक गूढ़ विशेषता को अपने भीतर समाहित किए हुए है। उनके व्याख्यानों में यह मौलिकता है कि वे स्वयं के उद्धरणों से लेकर सामाजिक संदर्भों का सहारा लेते हुए क्लिष्ट सिद्धांतों को इतनी सरलता से समझा देते हैं कि हर किसी के लिए उन बातों को समझना और समझने के साथ उन पर अमल करना सहज संभव हो जाता है। प्रस्तुत उद्बोधन में परमपूज्य गुरुदेव कुछ इसी तरह से आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांतों की व्याख्या करते दिखाई पड़ते हैं। वे कहते हैं कि बाहर का पूजा-पाठ और कर्मकांड एक प्रतीक मात्र हैं, उनके पीछे के सिद्धांतों को समझे बिना उन पर अमल करना किसी मूल्य का नहीं। वे दीपक प्रकाशित करने से लेकर पुष्प अर्पित करने की समसामयिक और प्रासंगिक व्याख्या करते नजर आते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

नासमझी को समझदारी में बदलना है आध्यात्मिकता

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

देवियो, भाइयो! जो लोग अपने कार्य पूरे करने के लिए, पैसे इकट्ठे करने के लिए और दूसरी चीजों के लिए अपनी जिंदगी को तबाह करते रहते हैं, मित्रो! मैं उनको समझदार कहूँ? कैसे समझदार कहूँ? मैं तो उन्हें नासमझ कहूँगा। आपकी दुनिया नासमझ है और आध्यात्मिकता का उद्देश्य आदमी की नासमझी को समझदारी में परिवर्तित करना है। मेरे साथ भी यही हुआ। पैंतालीस वर्ष पूर्व मेरी नासमझी में समझदारी का समन्वय किया गया और मैं छोटा-सा नासमझ मनुष्य और छोटा-सा मगरमच्छ स्वार्थों का मारा, इच्छाओं का मारा, वासनाओं का मारा; एक गए-गुजरे छोटे से मनुष्य के पास ज्ञान की धारा की एक अमृत किरण आई, तो मैं न जाने क्या-से-क्या हो गया।

मेरे साथ मेरे गुरुदेव ने जो किया और मैं चाहता हूँ कि स्थिति को भुला करके मैं भी आपके साथ वही करूँ, जो मेरे गुरुदेव ने मेरे साथ किया। मेरे गुरुदेव ने मेरा ज्ञान की धारा से परिचय कराया कि आध्यात्मिकता उस चीज का नाम है, जो मनुष्य के जीवन में समाविष्ट हो जाती है और जीवन में जो ज्ञान उतारा जा सकता है, उस चीज का नाम आध्यात्मिकता है।

मित्रो! मुझे बहुत पहले यह मालूम था कि आध्यात्मिकता उस चीज का नाम है, जो थोड़ी-सी पूजा, थोड़ा-सा टंटघंट जैसी चीजों में काम में लाई जाती है। मुझे आध्यात्मिकता का मतलब इतना मालूम था कि माला घुमाई जा सकती है, पूजा की जा सकती है। रामायण, गीता, भागवत पढ़ी जा सकती है। भगवान को चावल चढ़ाया जा सकता है, रोली चढ़ाई जा सकती है। आरती उतारी जा सकती है। आध्यात्मिकता के बारे में पहले मेरा यही ख्याल था। फिर मेरा यह ख्याल बदल गया। मेरी अक्ल और समझ को बदल दिया गया। उसमें जमीन-आसमान जैसा फरक हो गया। मुझे जब असलियत मालूम पड़ी, तो मैंने

कुछ और ही बात पाई। असलियत जब मैंने देखी तो यह पाया कि जो भी कर्मकांड है, जो भी उपासना है, उसका ऊपर का मतलब और उनका उद्देश्य एक ही है कि मनुष्य के अंतरंग का, उसकी जीवात्मा का स्तर ऊँचा उठाया जाए और मनुष्य की भावनाओं का विकास किया जाए।

आंतरिक जीवन की उत्कृष्टता है आध्यात्मिकता

मित्रो! भावनाओं का घटियापन है तो आदमी घटिया ही बना रहेगा। श्रेष्ठ नहीं बन सकता। अगर भावनाएँ ऊँची हैं तो वह कभी भी ऊँचा बन सकता है। ऊँचा व्यक्तित्व श्रेष्ठ व्यक्तित्व की निशानी है। ऊँचा व्यक्तित्व जहाँ कहीं भी होगा, ऊँचा व्यक्तित्व जहाँ कहीं भी निवास करता होगा, उसको लोकहित प्रधान और पालक माना जाएगा और घटियावाला व्यक्तित्व यदि मनुष्य का है, तो दुनियाभर की असुविधाएँ और कठिनाइयाँ पैदा हो रही होंगी। आंतरिक जीवन का तो सवाल ही कहाँ पैदा होता है। इसलिए हमें कर्मकांडों का, पूजा-उपासना का सारे-का-सारा रहस्य सिखाया गया है। यह बात मेरी समझ में आ गई और मेरे रोम-रोम में समा गई।

मैंने यह पाया कि जो कुछ भी हमें पूजा-पाठ के क्रिया-कृत्य करने हैं, उनके माध्यम से हमको अपने व्यक्तित्व, अपनी विचारणा, अपनी भावना और क्रियापद्धति का परिष्कार करना चाहिए। यह तथ्य मुझे मालूम पड़े। पूजा का यह रहस्य मुझे मालूम पड़ा। भगवान के चरणों पर क्यों गुलाब का फूल चढ़ाया जाता है, मेरी समझ में आ गया। खिलता हुआ गुलाब, हँसता हुआ गुलाब, मुस्कराता हुआ गुलाब, सुगंध से भरा हुआ गुलाब का फूल इस बात का अधिकारी है कि भगवान के चरणों में स्थान पाए और भगवान के गले में स्थान पाए।

भगवान को पुष्प अर्पित करने का अर्थ

मित्रो! गुलाब केवल उस पौधे का नाम नहीं है, जो वनस्पति के ढंग से पैदा होता है। भगवान उस आदमी का नाम नहीं है, जो गंदगी में रहता है और गुलाब का फूल अगर सूँघने को मिल जाए तो फूलकर कुप्पा हो जाता है। गुलाब के फूल से क्या लेना-देना भगवान को। सारी-की-सारी दुनिया में गुलाब ही तो खिले हुए हैं। बोलो क्या करेगा वह तुम्हारा गुलाब ले करके?

भगवान को गुलाब समर्पित करने का मतलब उसकी किसी जरूरत को पूरा करना नहीं है, बल्कि अपने मन के ऊपर एक छाप, एक संस्कार को डालना है कि मनुष्य का जीवन इस गुलाब के पुष्प की तरह से खिला हुआ होगा तो हम भगवान का प्यार और भगवान की समीपता पाने का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। क्या हम गुलाब के फूल के तरीके से खिलने की कोशिश करते हैं? क्या अपने आप को गुलाब की तरह सुगंधित बनाया? क्या अपने आप को हँसता हुआ आदमी बनाया? क्या अपने आप को पुष्प बनाया? क्या अपने आप को हँसता-हँसाता, खिलता-खिलाता व्यक्ति बनाया? क्या अपनी खुशी को दूसरे आदमी की खुशी देने का अधिकार दिया? अगर हमने ऐसा किया तो समझना चाहिए कि हमने फूल चढ़ाने की बात और फूल चढ़ाने का रहस्य जान लिया। अगर हमारी समझ में इतनी-सी बात आ गई तो मैं समझता हूँ कि आपका फूल चढ़ाना सार्थक हो गया।

मित्रो! इसी तरीके से हमने भगवान को चंदन चढ़ाया, कर्मकांड किया। सिंदूर चढ़ाने का मतलब यह नहीं कि भगवान गंदगी में रहता है और उसकी नाक में बदबू भरी रहती है। उनको चंदन लगा देंगे तो उनका काम चल जाएगा। इसका यह मतलब नहीं है। भगवान जहाँ रहता है, वहाँ खुशबू की कोई कमी नहीं है। वहाँ सुगंधित पदार्थ बहुत भरे रहते हैं। वहाँ धूपबत्तियाँ बहुत जलती रहती हैं। अगर हम चंदन न चढ़ाएँ तो भगवान जी को कोई तकलीफ होने वाली नहीं है।

सुगंधित द्रव्य और मिष्टान्न अर्पित करने का मर्म

सुगंधित पदार्थ चढ़ाने का मतलब यह है कि हमारा जीवन शांत और सुगंधित हो। जहाँ कहीं भी चंदन लगाया जाए, वहाँ शांति और सुगंध हो। जिस किसी भी मस्तिष्क पर लगाया जाए, उसे शीतल कर दे। चंदन के सम्मुख जो भी पौधे उगे हुए हों, वह उन उगे हुए पौधों में अपनी खुशबू उँड़ेल दे। हम अपने पास, अपने सम्मुख रहने वाले व्यक्तियों को भी वैसा ही बना दें, जैसा कि चंदन अपने समीप के पौधों को सुगंधित बना देता है। चंदन के आस-पास साँप, बिच्छू के जहर का उस पर असर आया? नहीं आया। वह आदमी जो चंदन के तरीके से अपने जीवन को बना लेता है या बना सकता है, उसी को यह हक है कि हमने चंदन चढ़ा करके, चंदन चढ़ाने का मकसद और चंदन चढ़ाने का उद्देश्य पूरा कर लिया।

मित्रो! भगवान को हम शक्कर चढ़ाते हैं, मिठाई चढ़ाते हैं। शक्कर चढ़ाने का मकसद और मिठाई चढ़ाने का मतलब क्या है? मिठाई चढ़ाने का मतलब यह है कि

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी–1

आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांत

(प्रथम किस्त)

परमपूज्य गुरुदेव की उद्बोधनों की शैली एक गूढ़ विशेषता को अपने भीतर समाहित किए हुए है। उनके व्याख्यानों में यह मौलिकता है कि वे स्वयं के उद्धरणों से लेकर सामाजिक संदर्भों का सहारा लेते हुए क्लिष्ट सिद्धांतों को इतनी सरलता से समझा देते हैं कि हर किसी के लिए उन बातों को समझना और समझने के साथ उन पर अमल करना सहज संभव हो जाता है। प्रस्तुत उद्बोधन में परमपूज्य गुरुदेव कुछ इसी तरह से आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांतों की व्याख्या करते दिखाई पड़ते हैं। वे कहते हैं कि बाहर का पूजा-पाठ और कर्मकांड एक प्रतीक मात्र हैं, उनके पीछे के सिद्धांतों को समझे बिना उन पर अमल करना किसी मूल्य का नहीं। वे दीपक प्रकाशित करने से लेकर पुष्प अर्पित करने की समसामयिक और प्रासंगिक व्याख्या करते नजर आते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

नासमझी को समझदारी में बदलना है आध्यात्मिकता

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

देवियो, भाइयो! जो लोग अपने कार्य पूरे करने के लिए, पैसे इकट्ठे करने के लिए और दूसरी चीजों के लिए अपनी जिंदगी को तबाह करते रहते हैं, मित्रो! मैं उनको समझदार कहूँ? कैसे समझदार कहूँ? मैं तो उन्हें नासमझ कहूँगा। आपकी दुनिया नासमझ है और आध्यात्मिकता का उद्देश्य आदमी की नासमझी को समझदारी में परिवर्तित करना है। मेरे साथ भी यही हुआ। पैंतालीस वर्ष पूर्व मेरी नासमझी में समझदारी का समन्वय किया गया और मैं छोटा-सा नासमझ मनुष्य और छोटा-सा मगरमच्छ स्वार्थों का मारा, इच्छाओं का मारा, वासनाओं का मारा; एक गए-गुजरे छोटे से मनुष्य के पास ज्ञान की धारा की एक अमृत किरण आई, तो मैं न जाने क्या-से-क्या हो गया।

मेरे साथ मेरे गुरुदेव ने जो किया और मैं चाहता हूँ कि स्थिति को भुला करके मैं भी आपके साथ वही करूँ, जो मेरे गुरुदेव ने मेरे साथ किया। मेरे गुरुदेव ने मेरा ज्ञान की धारा से परिचय कराया कि आध्यात्मिकता उस चीज का नाम है, जो मनुष्य के जीवन में समाविष्ट हो जाती है और जीवन में जो ज्ञान उतारा जा सकता है, उस चीज का नाम आध्यात्मिकता है।

मित्रो! मुझे बहुत पहले यह मालूम था कि आध्यात्मिकता उस चीज का नाम है, जो थोड़ी-सी पूजा, थोड़ा-सा टंटघंट जैसी चीजों में काम में लाई जाती है। मुझे आध्यात्मिकता का मतलब इतना मालूम था कि माला घुमाई जा सकती है, पूजा की जा सकती है। रामायण, गीता, भागवत पढ़ी जा सकती है। भगवान को चावल चढ़ाया जा सकता है, रोली चढ़ाई जा सकती है। आरती उतारी जा सकती है। आध्यात्मिकता के बारे में पहले मेरा यही ख्याल था। फिर मेरा यह ख्याल बदल गया। मेरी अक्ल और समझ को बदल दिया गया। उसमें जमीन-आसमान जैसा फरक हो गया। मुझे जब असलियत मालूम पड़ी, तो मैंने

कुछ और ही बात पाई। असलियत जब मैंने देखी तो यह पाया कि जो भी कर्मकांड है, जो भी उपासना है, उसका ऊपर का मतलब और उनका उद्देश्य एक ही है कि मनुष्य के अंतरंग का, उसकी जीवात्मा का स्तर ऊँचा उठाया जाए और मनुष्य की भावनाओं का विकास किया जाए।

आंतरिक जीवन की उत्कृष्टता है आध्यात्मिकता

मित्रो! भावनाओं का घटियापन है तो आदमी घटिया ही बना रहेगा। श्रेष्ठ नहीं बन सकता। अगर भावनाएँ ऊँची हैं तो वह कभी भी ऊँचा बन सकता है। ऊँचा व्यक्तित्व श्रेष्ठ व्यक्तित्व की निशानी है। ऊँचा व्यक्तित्व जहाँ कहीं भी होगा, ऊँचा व्यक्तित्व जहाँ कहीं भी निवास करता होगा, उसको लोकहित प्रधान और पालक माना जाएगा और घटियावाला व्यक्तित्व यदि मनुष्य का है, तो दुनियाभर की असुविधाएँ और कठिनाइयाँ पैदा हो रही होंगी। आंतरिक जीवन का तो सवाल ही कहाँ पैदा होता है। इसलिए हमें कर्मकांडों का, पूजा-उपासना का सारे-का-सारा रहस्य सिखाया गया है। यह बात मेरी समझ में आ गई और मेरे रोम-रोम में समा गई।

मैंने यह पाया कि जो कुछ भी हमें पूजा-पाठ के क्रिया-कृत्य करने हैं, उनके माध्यम से हमको अपने व्यक्तित्व, अपनी विचारणा, अपनी भावना और क्रियापद्धति का परिष्कार करना चाहिए। यह तथ्य मुझे मालूम पड़े। पूजा का यह रहस्य मुझे मालूम पड़ा। भगवान के चरणों पर क्यों गुलाब का फूल चढ़ाया जाता है, मेरी समझ में आ गया। खिलता हुआ गुलाब, हँसता हुआ गुलाब, मुस्कराता हुआ गुलाब, सुगंध से भरा हुआ गुलाब का फूल इस बात का अधिकारी है कि भगवान के चरणों में स्थान पाए और भगवान के गले में स्थान पाए।

भगवान को पुष्प अर्पित करने का अर्थ

मित्रो! गुलाब केवल उस पौधे का नाम नहीं है, जो वनस्पति के ढंग से पैदा होता है। भगवान उस आदमी का नाम नहीं है, जो गंदगी में रहता है और गुलाब का फूल अगर सूँघने को मिल जाए तो फूलकर कुप्पा हो जाता है। गुलाब के फूल से क्या लेना-देना भगवान को। सारी-की-सारी दुनिया में गुलाब ही तो खिले हुए हैं। बोलो क्या करेगा वह तुम्हारा गुलाब ले करके?

भगवान को गुलाब समर्पित करने का मतलब उसकी किसी जरूरत को पूरा करना नहीं है, बल्कि अपने मन के ऊपर एक छाप, एक संस्कार को डालना है कि मनुष्य का जीवन इस गुलाब के पुष्प की तरह से खिला हुआ होगा तो हम भगवान का प्यार और भगवान की समीपता पाने का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। क्या हम गुलाब के फूल के तरीके से खिलने की कोशिश करते हैं? क्या अपने आप को गुलाब की तरह सुगंधित बनाया? क्या अपने आप को हँसता हुआ आदमी बनाया? क्या अपने आप को पुष्प बनाया? क्या अपने आप को हँसता-हँसाता, खिलता-खिलाता व्यक्ति बनाया? क्या अपनी खुशी को दूसरे आदमी की खुशी देने का अधिकार दिया? अगर हमने ऐसा किया तो समझना चाहिए कि हमने फूल चढ़ाने की बात और फूल चढ़ाने का रहस्य जान लिया। अगर हमारी समझ में इतनी-सी बात आ गई तो मैं समझता हूँ कि आपका फूल चढ़ाना सार्थक हो गया।

मित्रो! इसी तरीके से हमने भगवान को चंदन चढ़ाया, कर्मकांड किया। सिंदूर चढ़ाने का मतलब यह नहीं कि भगवान गंदगी में रहता है और उसकी नाक में बदबू भरी रहती है। उनको चंदन लगा देंगे तो उनका काम चल जाएगा। इसका यह मतलब नहीं है। भगवान जहाँ रहता है, वहाँ खुशबू की कोई कमी नहीं है। वहाँ सुगंधित पदार्थ बहुत भरे रहते हैं। वहाँ धूपबत्तियाँ बहुत जलती रहती हैं। अगर हम चंदन न चढ़ाएँ तो भगवान जी को कोई तकलीफ होने वाली नहीं है।

सुगंधित द्रव्य और मिष्टान्न अर्पित करने का मर्म

सुगंधित पदार्थ चढ़ाने का मतलब यह है कि हमारा जीवन शांत और सुगंधित हो। जहाँ कहीं भी चंदन लगाया जाए, वहाँ शांति और सुगंध हो। जिस किसी भी मस्तिष्क पर लगाया जाए, उसे शीतल कर दे। चंदन के सम्मुख जो भी पौधे उगे हुए हों, वह उन उगे हुए पौधों में अपनी खुशबू उँड़ेल दे। हम अपने पास, अपने सम्मुख रहने वाले व्यक्तियों को भी वैसा ही बना दें, जैसा कि चंदन अपने समीप के पौधों को सुगंधित बना देता है। चंदन के आस-पास साँप, बिच्छू के जहर का उस पर असर आया? नहीं आया। वह आदमी जो चंदन के तरीके से अपने जीवन को बना लेता है या बना सकता है, उसी को यह हक है कि हमने चंदन चढ़ा करके, चंदन चढ़ाने का मकसद और चंदन चढ़ाने का उद्देश्य पूरा कर लिया।

मित्रो! भगवान को हम शक्कर चढ़ाते हैं, मिठाई चढ़ाते हैं। शक्कर चढ़ाने का मकसद और मिठाई चढ़ाने का मतलब क्या है? मिठाई चढ़ाने का मतलब यह है कि

भगवान को मीठा प्रिय है। इसका मतलब यह नहीं है कि भगवान को खटाई नापसंद है। इसका मतलब यह नहीं कि भगवान जी मिरच नापसंद करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरे जायके भगवान को पसंद नहीं हैं।

मिठाई चढ़ाने का मतलब सिर्फ एक है कि भगवान सबसे ज्यादा जिसे प्यार करते हैं, भगवान की सबसे प्रिय वस्तु जो हो सकती है, वह मनुष्य की वाणी की मिठास, मनुष्य के व्यवहार की मिठास, मनुष्य की क्रिया की मिठास, मनुष्य की वृत्तियों की मिठास है। अगर मिठास हमारे जीवन के हर क्रियाकलाप में घुल जाए तो हम इस बात के अधिकारी बन सकते हैं कि भगवान को हमारा जीवन और हमारी मनोभावना को मीठे की तरह समर्पित कर सकते हैं। हमारा व्यवहार मिठास से युक्त हो।

दीपक प्रकाशित करने का रहस्य

मित्रो! हम दीपक जलाते हैं। दीपक जलाने का मतलब यह नहीं है कि भगवान की आँखों की रोशनी कम हो गई है। जब आदमी को कम दिखाई पड़ता है, तो माइनस और प्लस के चश्मे लगाने पड़ते हैं। भगवान जी को मोतियाबिंद हो गया, यह मतलब नहीं है। भगवान जी की आँखें सही हैं। भगवान जी के आँखों को धरती पर रखी किताब पढ़ने में और अखबार पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं आती। उनकी आँखें सही हैं। फिर दीपक जलाने से क्या मतलब है?

हमको तो दीपक जलाने की जरूरत होती है; क्योंकि दिन में जब अँधेरा हो जाता है और बादल छा जाते हैं और प्रकाश कम होता है, तो बत्ती जलानी पड़ती है। ठीक है आँखें कमजोर हैं, इसलिए बत्ती जलानी पड़ती है; लेकिन भगवान जी की आँखें कमजोर नहीं हैं। भगवान जी की आँखों के आगे दीपक जलाएँ या न जलाएँ, उन्हें कोई दिक्कत होने वाली नहीं है। फिर दीपक जलाने की आवश्यकता क्या है? दीपक जलाने की जरूरत केवल यह है कि हम अपने जीवन में एक तरह की भावना का विकास करें कि भगवान को दीपक प्यारा है। भगवान दीपक को मुहब्बत करते हैं।

दीपक वह, जिसके मन में जलने की तमन्ना है। दीपक के पेट में प्यार भरा हुआ है। प्यार स्नेह-सत्कार को कहते हैं और स्नेह का दूसरा अर्थ घी भी होता है, तेल भी होता है। जिसके पेट में स्नेह भरा हुआ पड़ा है, वह है दीपक और जिसने यह नीति अख्तियार कर ली है कि मैं दुनिया में उजाला फैलाऊँगा और अँधेरे में उजाला करूँगा। इसके लिए मैं जलने के लिए तैयार हूँ।

दीपक की तरह प्रकाश देने वाले बनें

जो आदमी उजाला करने के लिए जलना मंजूर करता है, वह आदमी उन सितारों के तरीके से है, जो रात के समय जब चारों ओर अँधेरा छाया रहता है और उस अँधेरे से जो मुसाफिर रास्ता भूल सकते थे, भटक सकते थे; उनको अपनी छोटी-सी समझदारी के द्वारा रास्ता दिखाता रहता है। बच्चे गाते रहते हैं—''ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार, हाऊ आई वंडर व्हाट यू आर।''

मित्रो! इस तरीके से छोटा वाला मनुष्य अपनी छोटी-छोटी प्रवृत्तियों के कारण इस संसार में प्रकाश कैसे फैला सकता है। दूसरों को रास्ता दिखाने वाली जिंदगी कैसे जी सकता है। हम रास्ता दिखाने वाली जिंदगी जी सकते हैं। रास्ता दिखाने वाली जिंदगी गरीब आदमी भी जी सकते हैं और हजारों मनुष्यों को रास्ता दिखा सकते हैं।

काश! हमने ऐसी जिंदगी जी हो। ऐसी जिंदगी का जीना भगवान की भक्ति का, दूसरे कर्मकांडों, पूजा का उद्देश्य, भगवान का उद्देश्य पूरा कर सकता है। हमारे मन में केवल कर्मकांड की क्रिया समझ में आए और उद्देश्य समझ में आए, तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। तब हम अपने लक्ष्य तक पहुँच पाएँगे कि नहीं, यह कहना मुश्किल है।

इसलिए मित्रो! मेरे गुरुदेव ने मुझे बताया कि हमको जो आध्यात्मिकता के सहारे, पूजा के सहारे, गायत्री महामंत्र के सहारे हमें अपने आप का, अपनी जीवात्मा का विकास करना चाहिए और अपनी विचारणाओं, अपनी भावनाओं का परिष्कार करना चाहिए।

भावनाओं और विचारणाओं का परिष्कार जहाँ कहीं भी जिन व्यक्तियों ने शुरू किया—छोटे-से-छोटे, नगण्य-से-नगण्य, गरीब-से-गरीब मामूली आदमी महानतम व्यक्ति होते हुए चले गए। भगवान का अनुग्रह, कृपा और वरदान प्राप्त करने के लिए उन्हें इंतजार नहीं करना पड़ा। उन्होंने वह सब कुछ प्राप्त किया, जिसकी मामूली आदमी ख्वाब में कल्पना भी नहीं कर सकता। ऐसी चीजों का हकदार आप में से हर आदमी बन सकता है।

अगर आप लोगों को यह ख्याल आए कि आप लोगों को अपना मन, आपको अपनी नीयत, आपको अपना चाल-चलन, आपको अपनी रीति-नीति और आपको अपनी जिंदगी की गिरी

हुई स्थिति ठीक कर लेनी चाहिए। इतनी छोटी-सी बात अगर आपकी समझ में आ जाए, तो मजा आ जाए। आपको भगवान का प्यार और भगवान की कृपा मिलती हुई चली जाए।

अनुग्रह करने को प्रतीक्षारत हैं भगवान

मित्रो! इसी तरीके से निधि भी है। निधि पाने के लिए भगवान की कृपा और भगवान की दया और भगवान की मुहब्बत सुरक्षित रखी हुई है। भगवान बहुत देर से इस इंतजार में बैठा हुआ है कि कोई तो आदमी हो, जिसको कि मेरी मुहब्बत पाने का हक है। कोई तो आदमी हो, जिसको कि मैं अपना प्यार दूँ। कोई तो आदमी हो, जिसको कि मैं अपनी सहायता दूँ।

भगवान ने यही भरोसा किया है और उन्होंने बहुत तरह की बहुतों को सहायता दी है। अर्जुन को उन्होंने कहा—"अर्जुन! दुनिया में बुराइयाँ बहुत फैली हैं। बुराइयों का मुकाबला करने के लिए अपने आप को जोखिम में डालना चाहिए और दुनिया में से बुराई को दूर करना चाहिए।" अर्जुन ने कहा—"मुझे आप क्यों झगड़े में फँसाते हैं। इस काम को आप, किसी और को सौंप दीजिए और मुझे तो आप पूजा करने की बात बता दीजिए, जो दुनिया में सबसे सुगम काम है। इससे सुगम काम कोई और नहीं है। यह सबसे सस्ता और सबसे सरल काम है। कारोबार चलाना हो तो आपको अक्ल की जरूरत है। धागा टूटे नहीं और सूत खराब न हो जाए और कपड़ा खराब न हो जाए, बिक्री अच्छी हो, तभी फायदा मिलेगा। और माला घुमानी हो तो खट्-खट्-खट् घुमाते रहिए। स्पीड का ध्यान रखना। खट्-खट् माला घुमा दीजिए। सबसे सस्ता और सबसे सरल और सबसे हलका काम है भगवान का।

लेकिन मित्रो! अर्जुन ने कहा—"यह माला जैसा सस्ता काम दे दीजिए हमको। 56 लाख आदमी गंगा जी पर बैठे रहते हैं और सटक-सटक माला घुमाते रहते हैं। बस, यही काम मैं कर लूँगा, तो भी मेरा काम बन जाएगा। आप झगड़े में मुझे मत फँसाइए।" भगवान ने कहा—"अर्जुन! तुझे झगड़े में फँसना ही पड़ेगा; क्योंकि मैं जब भी दुनिया में अवतार लेता हूँ तब मेरे अवतार लेने के दो उद्देश्य हैं, एक उद्देश्य है—**धर्मसंस्थापनार्थाय** और दूसरा है—**परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।** धर्म की स्थापना और दुष्टों का विनाश।

"मैं कभी भी, कहीं भी आऊँगा तो इन दो कामों के लिए ही स्वयं आऊँगा। और कोई भी मेरा मकसद नहीं। अगर मैं मनुष्य के भीतर कभी आऊँगा, तो इन्हीं दो कामों के लिए आऊँगा, तीसरा कोई मकसद नहीं है मेरे आने का। जब मैं आऊँगा तो सभी को इस काम में लगाऊँगा। धर्म की स्थापना करने के लिए, जो व्यक्ति अपने स्वार्थ को भुला दे और अपनी सारी शक्ति को खरच कर डाले—वह आदमी पाप, अन्याय और बुराइयों को दूर करने के लिए अपनी शक्तियाँ खरच कर डाले। ऐसा तुम्हें भी करना चाहिए।"

मित्रो! अर्जुन ने भगवान की बात को मंजूर कर लिया। तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—"अपना गांडीव उठा और तीर चला। बाकी सब काम मैं कर लूँगा।" अर्जुन ने कहा—"मैं थक गया तब?" श्रीकृष्ण ने कहा—"मैं तुझे थकने नहीं दूँगा।" अर्जुन ने कहा—"मैं रास्ता भूल गया तब?" तब उन्होंने कहा—"मैं तेरे घोड़े चलाऊँगा।" भगवान आगे-आगे रथ चलाते हुए चले गए और अर्जुन गांडीव से तीर चलाता रहा। गांडीव चलाने वाले अर्जुन, जो कि भगवान का काम करने को कटिबद्ध हुए, भगवान की सहायता करने के अधिकारी हुए। यह तो पुराने जमाने की बात हुई।

बुद्ध को मिला भगवान का अनुग्रह

भगवान की आज्ञानुसार गौतम बुद्ध, जो पूजा-पाठ करते उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि आपका प्यार पाने के लिए मुझे क्या करना होगा। अपने जीवन में क्या काम करना होगा। उन्होंने कहा—"एक धर्म की स्थापना और एक पाप का विनाश। इसलिए तुम धर्म की स्थापना करो। लोगों से कहो—**बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।** समाज में संघबद्ध रहो और विवेक बुद्धि की, अक्ल की सहायता से अज्ञान और अनाचार, अवसाद और छोटापन, परंपराओं और मान्यताओं, इनके पीछे भागने वाली दुनिया को रोको और कहो—'**बुद्धं शरणं गच्छामि**—बुद्धि की शरण में जाऊँगा, विवेक की शरण में जाऊँगा। विवेक के अतिरिक्त अन्य सबको निस्तारित कर दूँगा।' उन्होंने कहा—सब संघबद्ध हो जाओ। इकट्ठे हो जाओ।"

मित्रो! बुद्ध ने भगवान की आज्ञा मानी। और '**बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि**' का संदेश लेकर भगवान बुद्ध चले गए और वैदिक हिंसा, तामसी और अंध परंपरा जो देश में फैली हुई थी, उसके लिए उन्होंने धर्मगत संघर्ष किया। उस जमाने का महान क्रांतिकारी बुद्ध अकेला था और जंगल में बैठा हुआ था। भगवान से उसने कहा—"आपने मुझे इतना बड़ा काम

सौंपा, मैं किस तरीके से काम करूँगा। मेरे पास रुपया-पैसा कहाँ है और मेरे पास साधन कहाँ हैं।''

भगवान ने कहा—''चल आगे-आगे और मैं आया रुपया ले करके।'' और मित्रो! वह आए, सम्राट अशोक के रूप में आए। उन्होंने कहा—''आप हैं, जो भगवान का काम करने के लिए बैठे हैं।'' बुद्ध ने कहा—''हाँ, भगवान की आज्ञानुसार, भगवान की इच्छानुसार मैंने अपने जीवन को हथेली पर रखा और अपनी सारी-की-सारी बागडोर भगवान के सुपुर्द कर दी।'' सम्राट ने कहा—''फिर आपको सामान, साधनों की जरूरत होगी।'' उन्होंने कहा—''हाँ, मुझे पैसा चाहिए, साधन चाहिए।'' अशोक ने कहा—''भगवान का सारा साधन आपके चरणों में समर्पित है।'' सारी-की-सारी चीजें, धन और दौलत उनके पास आ गईं। बुद्ध भगवान ने ढाई लाख शिष्यों के माध्यम से समूचे एशिया और सारे विश्व में क्रांति की लहर फैलाई और भगवान स्वयं अशोक के रूप में उनकी सहायता कर रहे थे।

मित्रो! एक बार देवता और असुर मिलकर समुद्रमंथन करने लगे। उनसे भगवान ने इच्छा की और उनको आज्ञा दी कि पुरुषार्थ किया जाना चाहिए और इस विश्व-वसुधा में जो अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, उनको निकाला जाना चाहिए। देवताओं ने कहा—''हम हार जाएँगे'' और असुरों ने कहा—''हम हार जाएँगे।'' भगवान ने कहा—''मैं तो जिंदा हूँ, तुम्हें हारने नहीं दूँगा।'' समुद्रमंथन होने लगा। मंदराचल पर्वत समुद्र के नीचे तलहटी में चलने लगा। देवता चिल्लाए—''महाराज! जिस मंदराचल से हम मथानी का काम ले रहे हैं, वह तो अब डूबा और हमारा काम फेल हुआ।'' कच्छप का रूप बना करके भगवान आए और मंदराचल को अपनी पीठ पर उठा लिया। समुद्रमंथन होता रहा और समुद्र से रत्न निकाले जाते रहे।

भगवान ने की शंकराचार्य की सहायता

मित्रो! शंकराचार्य भगवान का कार्य करने के लिए रवाना हुए और उनकी दिग्विजय की यात्रा बाधित हो गई। वे बीमार हो गए। शंकराचार्य ने कहा—''भगवन्! मैं बीमार हूँ। मैं बाईस साल का छोकरा हूँ और देखिए मुझे भगंदर का फोड़ा है। मैं बहुत छोटा हूँ और बीमार हूँ। आपका काम कैसे करूँगा।'' सम्राट मांधाता उनके पास आए। उन्होंने कहा—''शंकराचार्य! आप दिग्विजय करने के लिए विश्व में जा रहे हैं।'' उन्होंने कहा—''हाँ, जा रहा हूँ।'' तब राजा ने कहा—''आप मेरी सेना ले जाइए और मेरा रथ और सैनिक ले जाइए। आपसे शास्त्रार्थ में जो कोई मुकाबला करे, जो ज्ञान से आपका मुकाबला करे तो आप कीजिए और जो बल से मुकाबला करे, ताकत से धमकाना चाहे तो मेरे सैनिक उसकी अक्ल ठिकाने लगा देंगे।'' राजा मांधाता की करोड़ों की सेना और भरा खजाना आ गया शंकराचार्य की मदद के लिए।

मित्रो! मैं गांधी जी की बात कहूँगा, जो अभी-अभी की बात है। कैसे भगवान की सहायता मनुष्य के ऊपर बरसती हुई चली गई और चली जाती रहेगी। जापान में एक छोटा-सा छोकरा था। उसके मन में आया कि कमाते-खाते तो सभी हैं। धनवान, सुखी रहने की तमन्ना तो सभी के जी में है। मुझे एल.डी.सी., यू.डी.सी. बनने की अपेक्षा कुछ बेहतरीन काम करने चाहिए। मनुष्य का जीवन कुछ बेहतरीन कामों के लिए मिला है। इसलिए मुझे उन्हीं कामों में अपनी जिंदगी को लगा देना चाहिए।

जापान के गांधी कागावा के जी में यह बात आई। जिस तरह से महात्मा गांधी की तस्वीरें अपने यहाँ हर जगह रहती हैं। सभी महात्मा गांधी की जय बोलते हैं, सारा-का-सारा जापान भी एक ही आदमी की जय बोलता है और उस आदमी का नाम है—कागावा। एक छोटा-सा विद्यार्थी, जिसके माँ-बाप मर चुके थे। अकेला बच्चा रह गया था। क्या करना चाहिए? हमारे आपके जैसा आदमी होता तो यह ख्याल करता, यह ख्वाब देखता कि ब्याह कर लेना चाहिए। बच्चे पैदा करना चाहिए और नौकरी करनी चाहिए। अच्छा घर लेना चाहिए और सिनेमा देखना चाहिए। बीबी के लिए जेवर बनाने चाहिए। इन्हीं ख्वाहिशों में सारी-की-सारी जिंदगी खतम हो जाती है।

मित्रो! अगर हमारे, आपके जैसा घटिया आदमी जापान का गांधी कागावा होता तो? पर कागावा की तमन्नाएँ वो थीं, जो आध्यात्मिक मनुष्यों की होनी चाहिएँ। उन्होंने कहा—''मुझे जापान की सेवा करने के लिए भगवान ने भेजा है, मैं सेवा करूँगा।'' वह गाँव-गाँव गया, मुहल्ले-मुहल्ले गया। जहाँ कहीं भी गंदगी देखी, जहाँ कहीं कोढ़ी और गंदे लोग देखे, जहाँ कहीं शराबी, गरीब, गंदे लोग रहते थे, रोज खून-खच्चर होते थे। गाली-गलौज होते थे। जहाँ सारे-के-सारे लोग नरक में डूबे पड़े थे। जापान के गांधी कागावा वहाँ गए और उस मुहल्ले में अपनी झोंपड़ी बना ली। उन्हीं दरिद्र लोगों के बीच रहने लगे। (क्रमशः)

विश्वविद्यालय परिसर से –178

सेवा के संकल्प से संकलित हुए विद्यार्थी

सृजन का द्वार, देव संस्कृति विश्वविद्यालय अपने हर सत्र में नूतन व अभिनव उपलब्धियों को प्राप्त करता जा रहा है। यहाँ का प्रत्येक आयोजन परमपूज्य गुरुदेव के स्वप्नों को पूर्ण करने की ओर एक सार्थक कदम है। लोकरंजन से लोक-मंगल की ओर बढ़ने के भाव से एवं सभी शैक्षणिक, सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थीगण अपनी प्रतिभा का विकास करते हैं। सन् 2020 के प्रथम सत्र का आरंभ ज्ञानदीक्षा के पवित्र पर्व के साथ हुआ।

श्रद्धेय कुलाधिपति जी की अध्यक्षता में 11 जनवरी, 2020 को यह कार्यक्रम आयोजित किया गया। मुख्य अतिथि के रूप में कैबिनेट मंत्री डॉ० धन सिंह रावत एवं श्री मदन कौशिक जी पधारे। स्वागत भाषण प्रस्तुत करते हुए, माननीय कुलपति श्री शरद पारधी जी ने सभी परिजनों का स्वागत करते हुए कहा—''यह आयोजन परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी के संरक्षण में हो रहा है और यह विश्वविद्यालय सदैव अपने विद्यार्थियों को ऊपर उठाने का काम करता रहेगा और विद्यार्थीगण भी नचिकेता की भूमिका निभाएँगे—ऐसा विश्वास जताया।''

दीक्षा आरंभ की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए आदरणीय प्रतिकुलपति महोदय ने कहा—''यह पर्व, हर व्यक्ति में विद्यमान मानवीय उत्कर्ष की सर्वश्रेष्ठ संभावनाओं से परिचित करवाने का पर्व है। हर व्यक्ति का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में उपस्थित होना एक दिव्य अभियान का हिस्सा है, इसका उद्देश्य हमारी व्यक्तिगत चेतना को ईश्वरीय संकल्प के साथ जोड़ देना है, जिसको हम युग निर्माण योजना और विचारक्रांति-अभियान के नाम से जानते हैं। जिससे जुड़ जाने के बाद नर को नारायण बनते देर नहीं लगती।''

उन्होंने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा—''देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज भगवान का द्वार है और यहाँ हर व्यक्ति भगवान द्वारा ही बुलाया जाता है। ऐसे स्थान पर आ पाने का सौभाग्य तब व्यक्ति के जीवन में आता है, जब जन्म-जन्मांतरों के पुण्य फलित होते हैं और इसीलिए यहाँ पर जो भी व्यक्ति आए, एक अच्छे भाव को लेकर जाए।''

उच्च शिक्षा मंत्री डॉ० धन सिंह रावत जी ने अपने उद्बोधन में कहा—''ज्ञानदीक्षा जैसे प्रयोग से रैगिंग का माहौल खतम हो गया है। उन्होंने घोषणा की कि वे आने वाले सत्र से उत्तराखंड के जितने भी विश्वविद्यालय हैं, उन सब में दीक्षा आरंभ के संस्कार को शुरू करेंगे।'' कार्यक्रम में उपस्थित शहरी विकास मंत्री श्री मदन कौशिक जी ने कहा—''ज्ञानदीक्षा में आने के बाद ऐसा लगा कि नालंदा और तक्षशिला आज कहीं हैं तो देव संस्कृति विश्वविद्यालय में ही हैं।'' अपना व्यक्तिगत जीवन प्रसंग सुनाते हुए उन्होंने कहा—''मेरा पुत्र जब यूरोप उच्च शिक्षा के लिए जाने वाला था, उससे पूर्व मैंने उसे शांतिकुंज एक माह के लिए भेजा, उसके बाद मुझे जीवन में कोई संशय नहीं हुआ; क्योंकि मुझे पता है कि वो शांतिकुंज के संस्कारों में रहा हुआ छात्र है, कभी कोई कमी आ नहीं सकती।''

अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने कहा—''यह विश्वविद्यालय गुरुदेव के स्वप्नों का संस्थान है और इसके माध्यम से आने वाले वर्षों में बदलाव दिखने लगेगा। जमाना बदलेगा, तो एक प्रगतिशील विश्वविद्यालय से ही बदलेगा। हम यहाँ से ढेरों आचार्य चाणक्य बनाएँगे, जो देखते-देखते कई लोगों को बदल देंगे। आने वाले 10-15 सालों में हमारा देश जगद्गुरु बनने जा रहा है और जिन लोगों ने आज यहाँ दीक्षा ली है, वो सेवा के लिए काम करेंगे। अपनी संकल्पना सभी के साथ साझा करते हुए उन्होंने कहा कि वे अपना पूरा जीवन गुरुदेव की सेवा और विद्या जगत में खपाना चाहते हैं।''

ज्ञान की दीक्षा पाते ही सभी नवागंतुक विद्यार्थीगण उन्मुखीकरण के लिए उत्साहित दिखे। प्रत्येक सत्र की तरह उन्हें इस सत्र में भी दो दिवसीय उन्मुखीकरण कार्यशाला के माध्यम से विश्वविद्यालय, गायत्री परिवार एवं परमपूज्य गुरुदेव के विचारों से परिचित करवाया गया।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय की एलुमनाई असोसिएशन की शुरुआत की घोषणा की गई। विश्वविद्यालय के सभी पूर्व विद्यार्थीगण इसमें अपना पंजीयन करवा सकते हैं। इस असोसिएशन की शुरुआत का उद्देश्य विश्वविद्यालय से पूर्व में उपाधि ले करके निकले सभी विद्यार्थियों के लिए एक ऐसे मंच का निर्माण करना है, जिसके माध्यम से विश्वविद्यालय के सभी भूतपूर्व विद्यार्थियों के व्यक्तिगत, आध्यात्मिक, पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों के विकास की सतत समीक्षा की जा सके। यह असोसिएशन भूतपूर्व विद्यार्थियों के अतिरिक्त विश्वविद्यालय में वर्तमान में अध्ययन कर रहे सभी विद्यार्थियों के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण माध्यम का कार्य करेगी।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना का एक प्रमुख उद्देश्य युवाओं को नई दिशा देने के लिए सदैव प्रयासरत रहना है । हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी राष्ट्रीय युवा दिवस को बड़े ही मार्मिक ढंग से मनाया गया। श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी ने अपने संदेश में कहा कि स्वामी विवेकानंद विश्वमानव के कल्याण हेतु इस धरती पर आए थे, गायत्री परिवार उन्हें अपना आदर्श पुरुष मानता है। आदर्श जीवन के मार्गदर्शक बताते हुए श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने उन्हें अपनी श्रद्धांजलि समर्पित की। विश्वविद्यालय में भी छात्र-छात्राओं ने दीपयज्ञ और स्वाध्याय के माध्यम से उनके विचारों में रमण किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा लिए गए कुछ अभिनव संकल्पों के तहत विश्वविद्यालय द्वारा गायत्री परिजनों के लिए एक पर्यटन पोर्टल की शुरुआत की गई। संस्कृति ट्रेवल्स सोल्यूशन्स नामक इस प्रक्रम का उद्देश्य गायत्री परिजनों को पर्यटन के पैकेजों के अतिरिक्त ट्रेवल, वीजा आवेदन, पासपोर्ट आवेदन, होटल एवं ट्रांसपोर्ट की बुकिंग आदि की सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। इसके अतिरिक्त इस प्रकल्प द्वारा पूज्य गुरुदेव द्वारा की गई हिमालय यात्राओं पर आधारित एक विशेष पैकेज को उपलब्ध कराना भी है। ❑

साहित्यसृजन द्वारा जनमानस के परिष्कार की सबसे बड़ी सेवा हो सकती है। एक बार गांधी जी से किसी अमेरिकी व्यक्ति ने पूछा—''आपने असहयोग की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त की ?'' तो उन्होंने उत्तर दिया—''थोरो के साहित्य से।'' थोरो को उन्होंने देखा नहीं था, पर उनका प्रतिपादन इतना गजब का था कि उसके मार्गदर्शन ने न केवल भारत को स्वतंत्र कराया, वरन संसार से दासप्रथा की जड़ें भी उखाड़ फेंकीं। 'थोरो' अमेरिका में जन्मे, मजूरी करके पढ़े। स्नातक पदवी की फीस उन दिनों प्रमाणपत्र लेते समय पाँच डालर देनी पड़ती थी। उन्होंने प्रमाणपत्र व्यर्थ समझा और उस पैसे को दुःखियारों के लिए बाँट दिया। थोरो ने कुछ ही दिन नौकरी की। बाद में वे एक किराये के मकान में ही रहने लगे। गुजारे के लिए वे पेन्सिल बनाते थे। थोरो ने प्रायः सात सौ पुस्तकें एक-से-एक बढ़कर लिखी हैं, पर उनके जीवनकाल में एक संस्करण ही कठिनाई से बिका। उनके न रहने पर उन्हें विश्व का सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार माना गया। थोरो एक झील के तट पर झोंपड़ी बनाकर रहते थे। इमर्सन भी उनके साथ रहने लगे थे। अमेरिका का यह प्रसिद्ध लेखक गरीबी में ऋषियों की तरह मात्र 44 वर्ष जिया, पर इतने स्वल्पकाल में ही वह संसार के लिए बहुमूल्य ज्ञान संपदा छोड़ गया।

अपनों से अपनी बात

वर्तमान समय की सार्थक एवं सच्ची साधना

मनुष्य का मन बड़ा समर्थ और कौतुकी है। यह झाड़ी में से भूत और पत्थर में से करुणानिधान भगवान को पैदा कर लेता है। यह ज्ञान-साधना से मूर्ख को विद्वान और विद्वान को मूर्ख बना सकता है। यह कर्म-साधना से नई सृष्टि संरचना जैसे कमाल कर सकता है। जरूरत इतनी भर है कि यह एक सुनिश्चित संकल्प कर ले और फिर अविचल भाव से उस पर टिका रहे। प्रभु की माया भी बड़ी प्रबल है। कौतुकी मन स्वयं प्रभु की अपेक्षा उनकी माया-छाया में रुचि लेने लगता है तो भटक जाता है। साध्य को भूलकर साधनों में ही अटक जाता है। पूज्य गुरुदेव ने नवयुगसृजन के ईश्वरीय उद्देश्य में भागीदार बनने की प्रेरणा दी। उसके लिए प्रचारात्मक, सृजनात्मक और संघर्षात्मक चरण बढ़ाने के लिए सुनिश्चित मार्गदर्शन दिया। समर्थ मार्गदर्शन के अनुरूप नैष्ठिक प्रयास होने से सफलता मिलती ही है, लेकिन यही नैष्ठिक मन मायाग्रस्त होने लगता है।

नैष्ठिक प्रचारात्मक प्रयासों से आयोजनों में सफलता मिलती है, उससे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। प्राप्त प्रतिष्ठा को अगले चरण सृजन संगठन के लिए प्राप्त आवश्यक संसाधन भर मानना चाहिए। जिस व्यक्ति की प्रतिष्ठा ठीक नहीं होगी, उसके साथ कोई जुड़ना नहीं चाहता। प्रतिष्ठित व्यक्ति या समूह के साथ लोग सहज ही जुड़ने लगते हैं। यहाँ चूक यह होने लगती है कि लोग प्रतिष्ठा को प्रभुप्रदत्त संसाधन मानकर अपनी कमाई संपत्ति मानने लगते हैं। उसे संगठन और सृजन-प्रवृत्तियों के विकास में लगाने की जगह लोग व्यक्तिगत मान और प्रभाव बढ़ाने में लगाने लगते हैं। इस विसंगति से बचना चाहिए। शक्तिस्वरूपा माँ ने अपनी सभी धाराओं को अपने अभिन्न युगऋषि के उद्देश्यों के लिए समर्पित किया। उनसे यही विद्या लेने, इसी निष्ठा को फलीभूत करने के सदुद्देश्य से रूपरेखा बनाई और निभाई जानी चाहिए। नई सृष्टि करने के लिए नई दृष्टि पाने और अडिग आस्था से काम करने के लिए भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं कर्मयोग साधने की त्रिवेणी बहानी चाहिए।

माँ के प्रति भक्ति को विकसित, परिपक्व बनाया जाए। माँ अपनी आत्मीयता के आधार पर ही बच्चों के प्रजनन और पालन-पोषण के कष्टकारक कार्यों को सुखानुभूति के साथ कर पाती है। गर्भ में शिशु के आते ही उसका खाना-पीना दूभर हो जाता है। जन्म देते समय मरणासन्न कष्ट झेलना पड़ता है। पालन-पोषण के क्रम में वर्षों कठोर तप करना पड़ता है। उक्त सभी कष्ट-कठिनाइयों को माँ झेलती तो है ही, उसमें सुख, प्रसन्नता और गौरव का अनुभव भी करती है। उसकी गहन आत्मीयता का भाव ही इस कष्टदायक प्रक्रिया को हर्षदायक, आनंददायक बना देता है।

ऐसी ही समर्थ और सृजनोन्मुख आत्मीयता पाने और उसे अपने व्यक्तित्व में आत्मसात् करने की साधना की जानी चाहिए। इससे हम सब प्रसन्नता और गर्व का अनुभव करते हैं, लेकिन उन्हें आत्मीयता के सूत्रों से निरंतर जोड़े रखने, सृजन कौशल से सतत विकसित-परिष्कृत करते रहने की साधना नहीं के बराबर ही कर पाते हैं। वह सृजन की गौरवमयी प्रक्रिया हमें कठिन और बहुत बार अरुचिकर लगने लगती है। यह विसंगति अपने अंदर आत्मीयता का स्तर कमजोर होने के कारण ही उभरती-पनपती है। साधना की ऊर्जा से हमें यह कमी पूरी करनी ही है, ऐसा संकल्प अंत:करण में निरंतर उमड़ता रहे तो बात बने।

हम कुछ इस तरह सोचें, अनुभव करें कि नवसृजन के इस महाअभियान में हमने प्रभु की साझेदारी स्वीकार की है। स्नेहसलिला, शक्तिस्वरूपा वंदनीया माताजी के हम पुत्र-पुत्रियाँ हैं। संतान के अंदर माँ की विशेषताएँ बीज रूप में होती हैं। उन्हें विकसित-पल्लवित करके ही हम अपने इष्ट प्रयोजन में सफल हो सकते हैं। माँ ने कृपा करके इसके लिए ताना-बाना बुना है। यह आयोजन उनके उसी समर्थ ताने-बाने का अंग है। हमें इसका भरपूर लाभ उठाना है।

माँ बच्चों को समर्थ-स्वावलंबी बनाए बगैर संतोष का अनुभव नहीं करती। आयोजनों के माध्यम से जुड़ने वाले नर-नारी सब माँ की विकासशील संतानें हैं। हमें माँ उन्हें

विकसित करने की जिम्मेदारी सौंप रही हैं। हम नैष्ठिक प्रयास करेंगे तो माँ हमें उसके लिए समुचित अनुदान प्रसन्नतापूर्वक उपलब्ध कराती रहेंगी। इन्हें हम इतना प्यार-सहकार दें कि ये हमसे जुड़े रहने में हर्ष और हित होने का अनुभव करें। उन्हें क्रमशः परिजन, सहयोगी के रूप में विकसित करते हुए अग्रदूत के दायित्व निभाने के स्तर तक पहुँचाने का प्रयास करें। माँ के प्रति सच्ची भक्ति हमें इसके लिए वांछित कौशल, हर्ष एवं गौरव प्रदान कर सकती है।

विमल भक्ति के गर्भ में उपजे सदुद्देश्यपूर्ण लक्ष्यों की पूर्ति में ज्ञान की प्रखरता का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। प्रत्येक माता अपने शिशु को निश्चित रूप से स्वस्थ और संस्कारवान बनाना चाहती है। उसकी यह पवित्र चाह उससे कठोर तप-साधना भी करवा लेती है, किंतु यदि उसे स्वास्थ्य के नियमों का पता न हो, संस्कारों को विकसित करने की मनोवैज्ञानिक बारीकियों की जानकारी न हो, तो उन पवित्र भावों और कठोर तप-साधना के वांछित परिणाम निकलने में संदेह ही बना रहेगा।

यदि समुचित ज्ञान हो तो अपेक्षाकृत कम श्रम से भी बेहतर परिणाम पाए जा सकते हैं। इसलिए भक्ति-साधना के साथ समुचित ज्ञान-साधना भी हम सबको करनी ही पड़ेगी। नवयुगसृजन के लिए उपयुक्त एवं समर्थ ज्ञान की धाराएँ तो युगऋषि ने अपने भागीरथी तप से प्रवाहित कर दी हैं। उन्हें सर्वसुलभ और सुगम बनाकर जन-जन तक पहुँचाने की व्यवस्था 'वेदमूर्ति' ने कर दी है। अब उनके साझेदार, सहयोगी के रूप में विकसित होने के लिए हमें उसकी पूरक ज्ञान-साधना करनी है। हमें 'वेदमूर्ति' के समर्थ 'देवदूत' की भूमिका निभाने के लिए कमर कसनी होगी।

आदि शंकराचार्य ने 'प्रश्नोत्तरी' प्रकरण में लिखा है—'का दीर्घरोगः' अर्थात लंबा चलने वाला, कठिन रोग क्या है? उत्तर है—'भव एव साधो' अर्थात हे सज्जनो! यह संसार ही दीर्घरोग है। पुनः प्रश्न है—'किमौषधं तस्य?' अर्थात भवरोग की दवा क्या है? उत्तर है—'विचार एवं सुविचार ही उसकी प्रभावशाली दवा हैं।' उपनिषद् का भी कथन है—'संसार दीर्घ रोगस्य, सुविचारो हि महौषधम्।' अर्थात संसाररूपी दीर्घरोग की महान औषधि सुविचार ही हैं। युगऋषि, वेदमूर्ति ने अपनी प्रचंड ज्ञान-साधना से इस युग के प्रत्येक रोग की महान औषधियाँ जीवंत विचारों के रूप में तैयार कर दी हैं। उन्होंने एक कुशल वैद्य, चिकित्सक की कठिन भूमिका बड़ी कुशलता से पूरी कर दी है। यह बड़ा कठिन कार्य वे ही कर सकते थे, सो उन्होंने कर दिया। अब अगले चरण का अपेक्षाकृत सरल कार्य हमारे जिम्मे है, उसे हमें ही करना होगा। उसके अनिवार्य चरण इस प्रकार हैं—

विचार रूप सिद्ध औषधियों का महत्त्व स्वयं समझना और अपने संपर्क-क्षेत्र वालों को समझाना। रोग के अनुरूप औषधि का चुनाव करके उसका सेवन स्वयं करना और उस अनुभव के आधार पर संपर्क में आने वालों को उनके रोग के अनुरूप विचाररूपी औषधियाँ बताना व उपलब्ध कराना। औषधि सेवन करने में नियमितता बरतने और उसके साथ पथ्य-कुपथ्य का संतुलन बैठाने में प्रायः चूक होती है। उस समय उन्हें आत्मीयता भरे प्रोत्साहन, मार्गदर्शन और सहयोग की आवश्यकता होती है। यह भूमिका निभाने की क्षमता अर्जित करना ही सृजनशिल्पियों की ज्ञान-साधना की सफलता मानी जा सकती है।

गायत्री परिवार से सीधे जुड़े नर-नारियों को ज्ञान साधना में प्रवृत्त कराने और उसमें आगे बढ़ाते रहने का कार्य पहले चरण का सुगम कार्य है। इसमें कुशलता विकसित होने लगे तो अगले चरण में विभिन्न संगठन, धर्म-संप्रदायों के व्यक्तियों को भी इस धारा से जोड़ना होगा। भवरोग से पीड़ित तो वे भी हैं। रोगमुक्त तो उन्हें भी करना है। उज्ज्वल भविष्य के संवाहक समर्थ व्यक्तित्व तो उन सभी वर्गों में भी विकसित करने हैं। इसके लिए अपेक्षाकृत अधिक जीवंत संकल्प, सूझ-बूझ और प्रयास करने होंगे। इस स्तर की ज्ञान-साधना करने वाले मनस्वी भी सृजनसैनिकों में से ही उभारने होंगे।

जब तक अपनी ज्ञान-साधना का स्तर छोटा है, तब तक उक्त कार्य कठिन लगते हैं। साधना में प्रखरता आते ही वे कार्य संभव और सुगम लगने लगेंगे। ज्ञान-साधना में प्रखरता लाए बिना हमारी साधना आधी-अधूरी ही रह जाएगी। हमें अपनी-अपनी साधना को इस स्तर का बनाना है, जिसे दुनिया सार्थक माने और माँ के लिए संतोषप्रद सिद्ध हो। सिद्धियों का संबंध लोग चमत्कारिक-जादुई घटनाओं से जोड़ते हैं। वास्तव में सिद्धियों का संबंध कर्म की विशिष्ट कुशलताओं से होता है। अपनी आंतरिक सिद्धियों-विभूतियों

को उत्कृष्ट स्तर पर विकसित और विशिष्ट कुशलता के साथ प्रयुक्त करने की प्रामाणिक स्थिति को सिद्ध कहते हैं। इनके परिणाम बहुधा चमत्कारी ही होते हैं। उत्कृष्ट भावों को संकल्प का रूप देने और उन्हें पूरा करने वाले साधक संकल्प-सिद्ध हो जाते हैं। वाणी को सत्य, प्रिय, हितकारी ढंग से प्रयुक्त करने वाले साधक वचन-सिद्ध हो जाते हैं। जिनके हाथ कुशलतापूर्वक उत्कृष्ट कार्य करते रहते हैं, वे सिद्धहस्तों की श्रेणी में आते हैं।

हमें सृजनशिल्पी सिद्ध होना है। इसके लिए सृजन में सर्वोपरि रुचि लेनी होगी। उसके लिए समुचित भक्ति-साधना और ज्ञान-साधना करनी होगी। अंदर भक्ति की आत्मीयता और ज्ञान की सदाशयतापूर्ण प्रखरता के विकास के साथ ही उन्हें व्यवहार में उतारने की साधना तपश्चर्या स्तर पर करनी होगी। हमें इस उच्चस्तरीय साधना के लिए एक अच्छी प्रयोगशाला, व्यायामशाला जैसा स्वरूप देना होगा। आयोजनों के प्रयाज, याज और अनुयाज तीनों में इसी दृष्टि से नई सृष्टि करने के लक्ष्य निर्धारित करने होंगे। इसके लिए सार-संक्षेप में सूत्र इस प्रकार हैं—विश्व के सभी नर-नारी माँ जगज्जननी के पुत्र-पुत्रियाँ हमारे लिए सम्मानीय और प्रिय परिजन हैं। सभी को सद्भाव और सद्बुद्धि की साधना के माध्यम से उज्ज्वल भविष्य के मार्ग पर आगे बढ़ाना है। प्यार और सहकारपूर्वक सभी को सत्कर्म की साधना में लगाना है। साधना की सफलता के लिए साधना करने वालों को आत्मीयता के सूत्र में बाँधकर उन्हें संगठित-समर्थ बनाना है।

सभी को भवरोग से मुक्त करके स्वस्थ, समर्थ व्यक्तित्व के स्तर तक ले जाने के लिए भवरोगों की सिद्ध औषधियों, ऋषियों के अनुभूत ज्ञानसूत्रों को जन-जन तक पहुँचाना है। सफल स्वाध्याय के माध्यम से उनकी प्रज्ञा को इतना प्रखर बनाना है कि वे जीवन में उभरने वाले भेदों-अवरोधों को पार करते हुए इष्ट-लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ते रह सकें। इसके लिए जरूरी है साधनाक्रम में जुड़ने वालों के यहाँ छोटे-छोटे स्वाध्याय सेट स्थापित करना। नियमित स्वाध्याय के लिए प्रेरित-प्रशिक्षित करने का क्रम बनाना। आयोजनों में साहित्य प्रदर्शनी, छोटे-बड़े पुस्तक मेले लगाना। वहाँ ऐसे आकर्षक वाक्य लगाना, जिन्हें पढ़कर लोगों में जिज्ञासा और उत्साह जागे। जैसे—'पुस्तकें जो रोज बदल रही हैं हमारा जीवन, पाएँ समस्या के अनुरूप समाधान, रोग के अनुरूप औषधि ले जाएँ।'

वहाँ विभिन्न प्रकार की जिज्ञासाओं के अनुरूप पुस्तकों के सेट उपलब्ध हों। वहाँ ऐसे स्वाध्यायशील व्यक्ति उपलब्ध रहें, जो जिज्ञासुओं को उनकी आवश्यकता के अनुरूप पुस्तकें दिखा सकें। साधना एवं स्वाध्याय के माध्यम से जुड़ने वालों को प्रज्ञामंडल, स्वाध्यायमंडलों में गठित करके युगशक्ति, लाल मशाल की छोटी-छोटी प्रामाणिक इकाइयों को जीवंत बनाने के लक्ष्य रखें। यह सृजनशील भूमिका निभाकर ही हम सार्थक एवं सच्ची साधना कर सकते हैं। इसके लिए ऋषिसत्ता से नई दृष्टि लेकर नई सृष्टि करने के विवेकपूर्ण संकल्प लेने होंगे और तदनुसार साहसिक कदम बढ़ाने होंगे। ❑

फार्म-4

(1)	प्रकाशन स्थान	मथुरा
(2)	प्रकाशन अवधि	मासिक
(3)	मुद्रक का नाम	मृत्युंजय शर्मा
	क्या भारत का नागरिक है	हाँ
	पता	जनजागरण, प्रेस, वृंदावन मार्ग, मथुरा
(4)	प्रकाशक का नाम	मृत्युंजय शर्मा
(5)	संपादक का नाम	डॉ० प्रणव पण्ड्या
	क्या भारत का नागरिक है	हाँ
	पता	शांतिकुंज, हरिद्वार
(6)	उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	मृत्युंजय शर्मा अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा (उ०प्र०)

मैं मृत्युंजय शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

—मृत्युंजय शर्मा

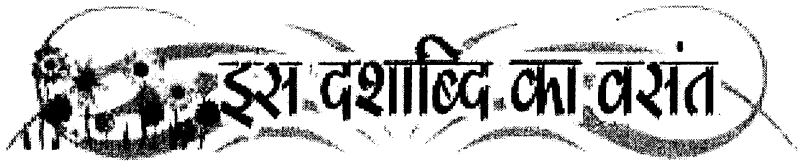

नव दशाब्दि का यह वसंत, मन में उत्साह जगाता है।
प्रखर साधना के स्वागत में, यह आवाज लगाता है॥

यह दशाब्दि रचनात्मक ऐसी, सृजन विश्व में होगा।
प्रखर साधना से भारत अब, व्यसनमुक्त फिर होगा॥
पर्यावरण और प्रकृति से, सब ही प्यार करेंगे।
संरक्षित करने धरती, जन-जन तैयार करेंगे॥
मातृशक्ति श्रद्धांजलि हेतु, वंदनवार सजाता है।
प्रखर साधना के स्वागत में.....॥

स्वस्थ देश होगा भारत, जल-जीवन की हरियाली।
संस्कारों में स्वच्छ जागरण, भारत में खुशहाली॥
सोलह संस्कारों से गढ़कर, दिखलाएँगे पीढ़ी।
यह दशाब्दि चढ़ती जाएगी, सतयुग की फिर सीढ़ी॥
उपवन का यह आम्र बौर भी, हमको बहुत सुहाता है।
प्रखर साधना के स्वागत में.....॥

नवल सृजन हित महामंत्र जप, मातृशक्ति श्रद्धांजलि।
प्रखर साधना समय साधना, अंशदान पुष्पांजलि॥
नारी की गरिमा समझेंगे, गंगा स्वच्छ बनेगी।
हरी चुनरिया से धरती, माता की माँग सजेगी॥
राष्ट्रभक्ति वासंती चोला, गाथा वीर सुनाता है।
प्रखर साधना के स्वागत में.....॥

रंग दे वसंती चोला माई, देशभक्ति के गाने।
राष्ट्रभक्ति सैनिक शहीद के, गाएँ सभी तराने॥
छद्म वेश आंतक बुराई, सबका अंत सुनिश्चित।
भारत का कश्मीर भाल फिर, होगा अरे सुनिश्चित॥
काश्मीर लद्दाख हिमालय, गौरव भान कराता है।
प्रखर साधना के स्वागत में.....॥

—राजकुमार वैष्णव

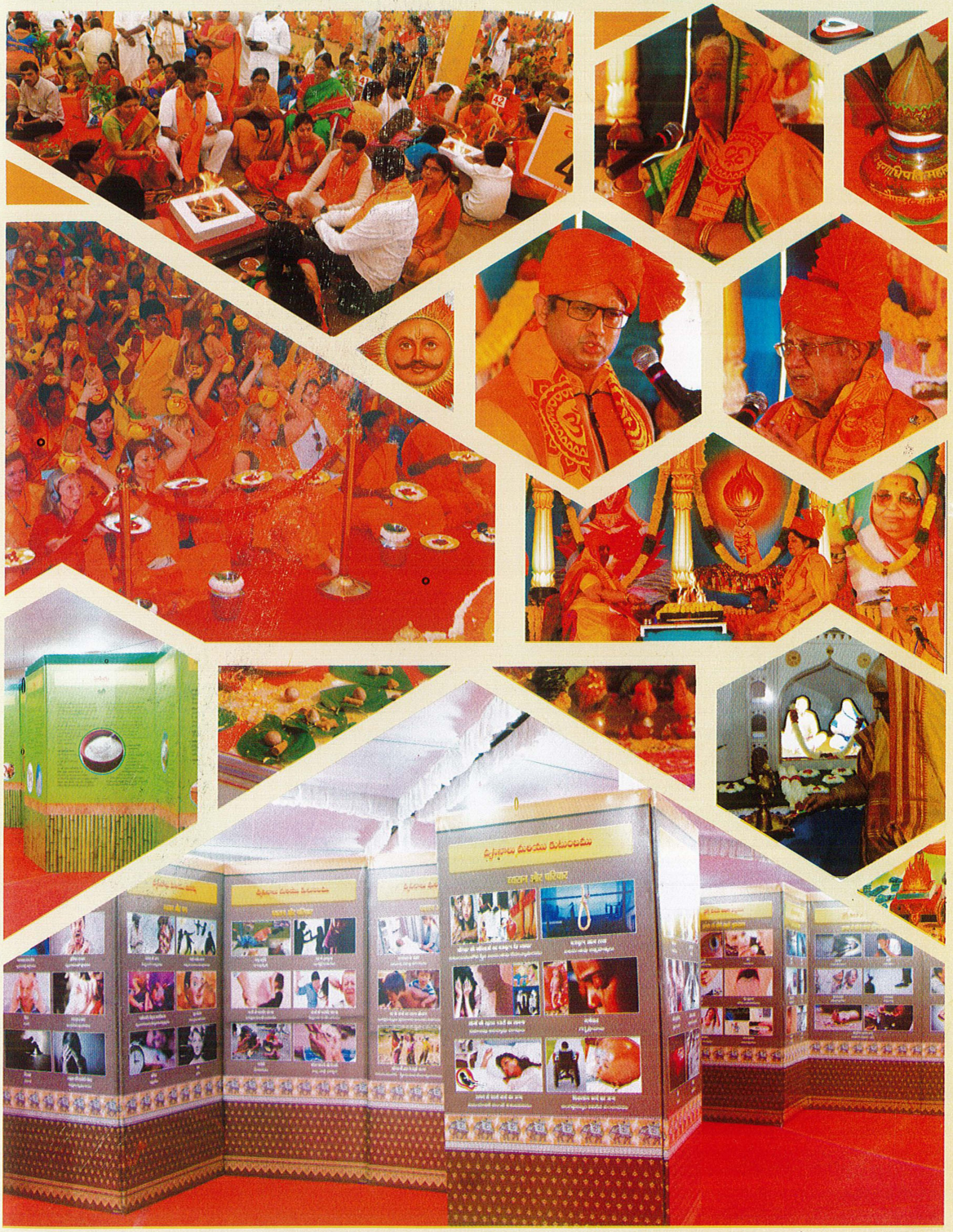

अश्वमेध महायज्ञ–हैदराबाद (तेलंगाना) की कतिपय झलकियाँ

अखण्ड ज्योति

(मासिक)

R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-03-2020

Regd No. Mathura-025/2018-2020

Licensed to Post without Prepayment

No: Agra/WPP-08/2018-2020

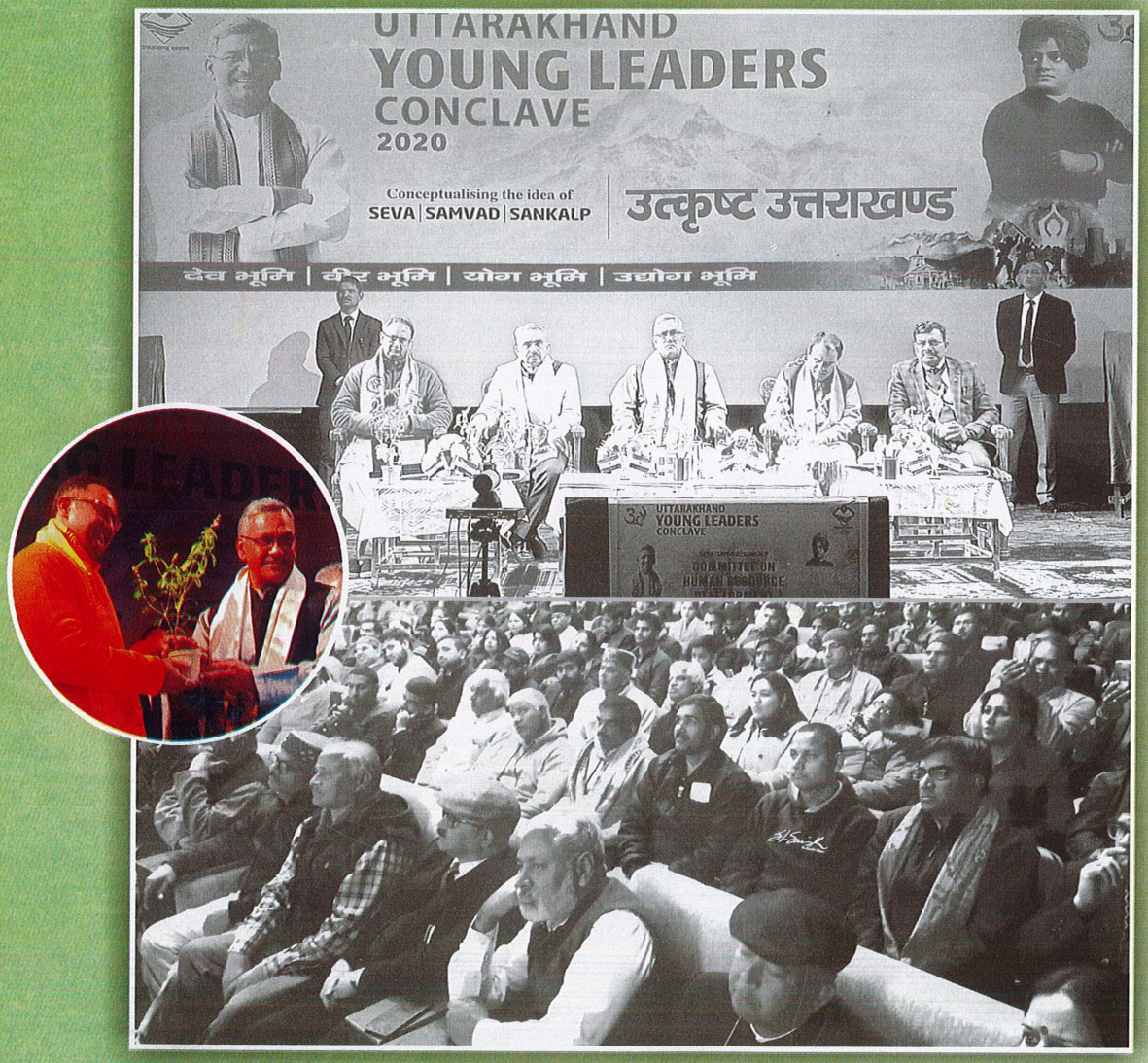

उत्तराखंड सरकार द्वारा आयोजित 'उत्कृष्ट उत्तराखंड– 2020' सम्मेलन में शांतिकुंज प्रतिनिधि के रूप में प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय की सक्रिय भागीदारी

, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष–0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org